उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान: मनोभौतिकी एवं प्रत्यक्षात्मक प्रक्रियायें

(एमएपीएसवाई -512)

(Cognitive Psychology: Psychophysics and Perceptual processes

(**MAPSY-512**)

अनुक्रमणिका

इकाई संख्या	**इकाई का नाम**	**पृष्ठ संख्या**
	खण्ड 1: संज्ञानात्मक मनोविज्ञान:- स्वरूप एवं विषय-क्षेत्र (Cognitive Psychology:- Nature and Scope)	
इकाई-1	संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Historical perspective of Cognitive Psychology)	1-8
इकाई-2	संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का विषय-क्षेत्र (Scope of Cognitive Psychology)	9-13
इकाई-3	संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की विधियाँ (Methods of Cognitive Psychology)	14-18
	खण्ड 2: मनोभौतिकी (Psychophysics)	
इकाई-4	मनोभौतिकी का अर्थ; बेवर एवं फेकनर का नियम (Meaning of Psychophysics; Law of Weber and Fechner)	19-31
इकाई-5	देहली या अवसीमा का संप्रत्य एवं सैद्धान्तिक दृष्टिकोण (Concept and Theoretical View of Threshold)	32-39

इकाई-6	अवसीमा का प्राचीन (संकेत संज्ञान) सिद्धान्त (Classical (Signal Detection) Theory of Threshold)	40-46
इकाई-7	मनोभौतिकी विधियाँ:- प्राचीन व आधुनिक (Psychophysical Methods:- Classical and Modern)	47-55
	खण्ड 3: अवधान एवं प्रत्यक्षण प्रक्रियाएँ (Attention and Perceptual Processes)	
इकाई-8	अवधान:- स्वरूप, प्रकार, सिद्धान्त; अवधान में भंग एवं परिवर्तन (Attention:- Nature, Types and Theories; Shift and distraction in attention)	56-69
इकाई-9	प्रत्यक्षीकरण:- स्वरूप, सिद्धान्त (आकार एवं पृष्ठभूमि) एवं इसको प्रभावित करने वाले कारक (Perception:- Nature, Theory (Figure and Background) and its Influencing Factors)	70-84
इकाई-10	गहराई प्रत्यक्षीकरण, प्रतिरूप प्रत्याभिज्ञान, प्रत्यक्षात्मक स्थिरता:- चमकीलापन, आकार एवं रूप (Depth Perception, Pattern Recognition and Perceptual Constancy:- Brightness, Size and Shape)	85-97
इकाई-11	भ्रम एवं उसके सिद्धान्त (Illusion and its Theories)	98-110

इकाई-1 संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
(Historical perspective of Cognitive Psychology)

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का आशय
1.4 संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं की विशेषता
1.5 संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1प्रस्तावना

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक नई शाखा है, कुछ मनोवैज्ञानिकों ने मनोवैज्ञानिक संज्ञान को सूचना संसाधन की प्रक्रिया माना है, तो कुछ लोग उसे मानसिक प्रतीकों के प्रहस्तन के रूप में मानते हैं, कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि मनोवैज्ञानिक संज्ञान समस्या समाधान के रूप में, चिन्तन के रूप में तथा विभिन्न मानसिक प्रक्रियाओं के रूप में होता है। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक संज्ञान के बारे में पाँच दृष्टिकोण या उपागम प्रचलित हैं। इसलिये संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं पर विचार करते समय हमें इन सभी उपागमों को ध्यान में रखना चाहिए।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संज्ञान का तात्पर्य ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया से है, जिसमें समस्त मानसिक प्रक्रियायें शामिल होती हैं। संज्ञान या मानसिक क्रिया में अर्जन, संग्रहणपुनर्प्राप्ति एवं ज्ञान के उपयोग की प्रक्रियायें शामिल हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि संज्ञान में अनेक मानसिक प्रक्रियायें सन्निहित होती हैं।

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान को परिभाषित करते हुए राबर्ट ने कहा है कि, ’’संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के सम्पूर्ण प्रसार-संवेदना से प्रत्यक्षीकरण, तंत्रिका विज्ञान, प्रतिरूप, प्रतिभिज्ञा, अवधान, चेतना, अधिगम, स्मृति, सम्प्रत्यय निर्माण, चिन्तन, कल्पना, भाषा, बुद्धि, संवेग एवं विकासात्क प्रक्रियाओं को

सम्मिलित करता है और व्यवहार के अदृश्य क्षेत्रों को सीमा से बाहर करता है।" इस प्रकार स्पष्ट है कि संज्ञानात्मक मनोविज्ञान संज्ञान का एक वैज्ञानिक अध्ययन है, जिसमें अनेक मानसिक प्रक्रियायें सम्मिलित हैं।

संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं की अनेक विशेषताएँ होती हैं, जो आन्तरिक स्तर पर घटित होती हैं, उनका बाह्य प्रेक्षण नहीं किया जा सकता है। जब हम संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के विकास की पूरी ऐतिहासिक समीक्षा करते हैं, तो स्पष्ट होता है कि सन् 1950 एवं 1960 के दशकों में हुये वैज्ञानिक परिवर्तनों से संज्ञानात्मक मनोविज्ञान को काफी सहायता मिली है, मानसिक प्रक्रियाओं के वैज्ञानिक अध्ययन का मार्ग प्रशस्त होने लगा।

1.2उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे:

1. संज्ञानात्मक मनोविज्ञान क्या है?
2. संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं की क्या विशेषता होती है?
3. संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य क्या है?

1.3 संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का आशय

जैसा कि इसके नाम से ही संकेत प्राप्त हो रहा है, संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं (Cognitive processes) का अध्ययन किया जाता है। इसका लक्ष्य प्रयोग करना तथा ऐसे सिद्धान्तों को विकसित करना है जिनसे यह व्याख्या हो सके कि मानसिक प्रक्रियाओं को संगठित (organized) कैसे किया जाता है तथा वह किस तरह से कार्य करता है। कुछ परिभाषाएँ यहाँ प्रस्तुत हैं।

निस्सर (Neisser, 1967) के अनुसार -"संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का आशय उन सभी प्रक्रियाओं से है जिनके द्वारा संवेदी निवेश परिवर्तित होता है, घटता है, विस्तृत होता है, संचित होता है, उसकी पुनः प्राप्ति होती है तथा पुनः उसका उपयोग किया जाता है।"

एटकिन्सन, इत्यादि (Atkinson, et.al. 1985) के अनुसार – "संज्ञानात्मक मनोविज्ञान संज्ञान का वैज्ञानिक अध्ययन है। उसका उद्देश्य प्रयोग करना तथा ऐसे सिद्धान्तों का विकास करना होता है, जिनसे इस बात की व्याख्या हो कि मानसिक प्रक्रियाओं को किस तरह से संगठित किया जाता है तथा वे किस प्रकार कार्य करती हैं।"

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में यह जानने का प्रयास किया जाता है कि मनुष्य संसार के बारे में किस तरह से सूचना प्राप्त करते हैं तथा उस पर ध्यान देते हैं, वैसी सूचनाएँ किस तरह से सम्बन्धित होती हैं और मस्तिष्क द्वारा संसाधित होती हैं एवं हम लोग किस तरह से समस्याओं के बारे में सोचते हैं, उनका समाधान करते हैं तथा भाषा का निर्माण करते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के बारे में निम्नांकित निष्कर्ष प्रस्तुत कर सकते हैं -

(i) इसमें संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं जैसे- प्रत्यक्षण, स्मृति, समस्या समाधान, सम्प्रत्यय निर्माण, तर्कना, निर्णय प्रक्रिया, भाषा आदि मुख्य हैं, का अध्ययन किया जाता है।

(ii) संज्ञानात्मक प्रक्रिया संवेदी निवेश (sensory input) से प्रारम्भ होती है। व्यक्ति वातावरण में उपस्थित उद्दीपकों का सबसे पहले प्रत्यक्षीकरण करता है और तब उसके प्रति अनुक्रिया करता है। प्रत्यक्षीकरण एवं ध्यान के माध्यम से ही संवेदी निवेश की प्रक्रिया सम्पन्न होती है।

(iii) संवेदी निवेश को परिवर्तित भी किया जाता है। अर्थात् वातावरण के उद्दीपकों से प्राप्त सूचनाओं को संवेदी उपकरण (sensory apparatus) जिसमें ज्ञानेन्द्रियाँ तथा मस्तिष्क मुख्य रूप से सम्मिलित है, अधिक या कम करके उनका रूप परिवर्तित कर देता है।

(iv) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का प्रमुख कार्य संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का अध्ययन करना तथा उनके बारे में कुछ ऐसे सिद्धान्तों को विकसित करना ताकि यह व्याख्या की जा सके कि मानसिक प्रक्रियाओं को किस तरह संगठित किया जाता है तथा वे किस तरह से कार्य करती है।

संक्षेप में स्पष्ट है कि संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

1.4संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं की विशेषताएँ

i. संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ परस्पर सम्बन्धित होती हैं - संज्ञानात्मक प्रक्रिया के विभिन्न तत्वों के बीच जटिल अन्तःक्रिया होती है। एक निश्चित संप्रत्यय सीखने में कई सोपान तथा प्रक्रियाएँ सन्निहित होती है।

ii. संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ सक्रिय होती हैं - संज्ञानात्मक उपागम की मान्यता है कि व्यक्ति वातावरण से भिन्न-भिन्न तरह की सूचनाओं को ग्रहण करने के लिए तत्पर रहता है। वह नये-नये ज्ञान एवं विकास के लिए सतत् प्रयास करता है।

iii. संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं में सूक्ष्मता तथा शुद्धता पाई जाती है - इससे निर्णय में शुद्धता बढ़ती है।

iv. संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में धनात्मक सूचनाओं की व्याख्या नकारात्मक सूचनाओं की तुलना में अधिक अच्छे ढंग से की जाती है। धनात्मक सूचनाएँ अधिक उपयोगी हैं।

v. संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ आन्तरिक स्तर पर घटित होती हैं - संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का प्रत्यक्षतः प्रेक्षण नहीं कर सकते हैं। जैसे - यदि हम किसी को कोई पाठ याद करते हुए या समस्या का समाधान करते हुए या कोई निर्णय करते हुए देखते हैं, तो मात्रा देखकर निहित संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के बारे में अनुमान नहीं लगाया जा सकता है।

संक्षेप में, संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं की कतिपय विशेषताएँ होती हैं तथा संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ आन्तरिक स्तर पर घटित होती हैं। उनका बाह्य प्रेक्षण नहीं किया जा सकता है।

1.5संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

मन में ज्ञान का निरूपण किस तरह से होता है। ज्ञान किस तरह से अर्जित किया जाता है, संचित किया जाता है तथा उसका उपयोग किया जाता है? चेतना क्या है? तथा किस तरह से चेतन विचारों की उत्पत्ति होती है? प्रत्यक्षीकरण तथा स्मृति का स्वरूप क्या है? चिन्तन क्या है? उनसे सम्बद्धक्षमताओं का विकास कैसे होता है? ऐसे ही प्रश्नों का उत्तर देना संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का कार्य है। ऐसे ही प्रश्नों का उत्तर खोजने के प्रयास में संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की उत्पत्ति हुई है। इस प्रसंग में दो विचारधाराओं का उल्लेख करना प्रांसगिक होगा।

(i) अनुभववादियों (empiricists) का मत है कि व्यक्ति में ज्ञान का अर्जन अनुभव से होता है।

(ii) सहजवादियों (nativist) का मत है कि ज्ञान का अर्जन व्यक्ति की जन्मजात विशेषताओं (innate characteristics) के कारण हो पाता है।

ग्रीक दार्शनिक अरस्तू (Aristotle) का मत है कि ज्ञान व्यक्ति के हृदय में अवस्थित होता है, हालांकि प्लेटो (Plato) का मत था कि ज्ञान का केन्द्र हृदय न होकर मस्तिष्क होता है। पुनर्जागरण दार्शनिक (Renaissance philsopher) ने भी कहा है कि ज्ञान व्यक्ति के मस्तिष्क में अवस्थित होता है। 18वीं शताब्दी के कुछ दार्शनिक मनोवैज्ञानिक जैसे जॉर्ज वर्कली, डेविड ह्यूम, जेम्स मिल तथा उनके शिष्य जेम्स स्टुअर्ट मिल ने इस बात पर बल दिया कि ज्ञान का आंतरिक निरूपण (internal representation) तीन प्रकार का होता है -

1. प्रत्यक्ष संवेदी अनुभव
2. घटनाओं की धूमिल प्रतिमा
3. उक्त प्रतिमाओं का रूपान्तरण

ऐतिहासिक समीक्षा से स्पष्ट होता है कि 19वीं शताब्दी में कुछ दैहिकशास्त्रियों जैसे फेकनर (Fechner) एवं हेल्महोज (Helmholtz) तथा कुछ मनोवैज्ञानिकों जैसे- ब्रेनटानो (Berntano), हेल्महोज (Helmholtz), विलहेम उंट (Wilhelm Wundt), जी.ई. मूलर (G.E. Muller), कुल्पे (Kulpe), हरमन इविंगहॉस (Hermann Ebbinghaus), सर फ्रांसिस गाल्टन (Sir Francis Galton), टिचनर (Titchener) तथा विलियम जेम्स (William James) के प्रयासों के फलस्वरूप मनोविज्ञान दर्शनशास्त्रा से अलग होकर एक स्वतंत्र शाखा के रूप में स्थापित होने लगा और 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ज्ञान का निरूपण के सिद्धान्त का स्वरूप स्पष्टतः द्विविभाजित (dichotomous) था। जिसमें उन्ट तथा टिचनर ने मानसिक निरूपण की संरचना पर बल दिया जबकि ब्रेनटानो (Brentano) आदि ने क्रिया या प्रक्रिया पर अधिक बल दिया। ब्रेनटानो ने

संज्ञानात्मक क्रियाओं जैसे निर्णय करना, तुलना करना, भाव आदि को मनोविज्ञान के अध्ययन का उचित विषयवस्तु बताया।

1879 में विलहेम वुण्ट ने जर्मनी के लिपजिग विश्वविद्यालय में मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करने के लिए प्रथम प्रयोगशाला स्थापित की। हियर्स्ट (Hearst, 1979) के अनुसार वुण्ट के दिशानिर्देश में 186 लोगों ने मनोविज्ञान में पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की एवं मनोविज्ञान की प्रयोगशालाओं की स्थापना का दौर प्रारम्भ हो गया। वुण्ट तथा उनके सहयोगी मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन अंतर्निरीक्षण विधि (introspection method) से करते थे।

वुण्ट की यह विधि कई अर्थों में आधुनिक संज्ञानात्मक शोध विधियों से मिलती-जुलती है। वुण्ट के अनुसार उच्चतर मानसिक प्रक्रियाओं, जैसे - चिंतन, भाषा तथा समस्या समाधान आदि का अध्ययन प्रयोगशाला में अंतर्निरीक्षण विधि द्वारा नहीं किया जा सकता है, परन्तु ओस्वाल्ड कुल्पे (Oswald Kulpe) ने उर्जा बर्ग विश्वविद्यालय (Wurzburg University) में शोधों के आधार पर कहा कि किसी समस्या के समाधान के दौरान प्रयोज्यों के मन में किसी तरह की कोई प्रतिमा नहीं बनती है। इसे प्रतिमारहित चिंतन का नाम दिया गया। अन्य मानसिक प्रक्रियाओं का वुण्ट द्वारा अध्ययन किया गया जो आज के संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के लिये आधार बना।

परन्तु अमरीकी मनोवैज्ञानिकों ने अन्तः निरीक्षण को स्वीकारने पर आपत्ति किया। विलियम जेम्स (William James) उस समय के सबसे महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक थे जो इसकी जगह पर एक अधिक अनौपचारिक उपागम या विधि का उपयोग पसंद करते थे और उन्होंने अपनी पुस्तक प्रिंसपुल्स ऑफ साइकोलोजी (principles of pyschology,1880) मानव अनुभूतियों का विस्तृत अध्ययन भी प्रस्तुत किया। संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र में उनका महत्वपूर्ण योगदान उनके द्वारा प्रस्तावित स्मृति (memory) का सिद्धान्त था जिसमें उन्होंने स्मृति कोदो वर्गों में विभक्त किया - प्राथमिक स्मृति (primary memory) तथा गौण स्मृति (scondary memory)। प्राथमिक स्मृति को आजकल लघु कालीन स्मृति (Short-term memory or STM) तथा गौण स्मृति को दीर्घकालीन स्मृति (long term memory or LTM) कहा जाता है।

व्यवहारवाद के संस्थापक वाटसन (1913) थे, इन्होंने अन्तःनिरीक्षण का विरोध किया। इस स्कूल ने वस्तुनिष्ठ प्रेक्षण एवं प्रयोगात्मक विधि को ही वैज्ञानिक विधि माना। व्यवहारवादियों का मत था कि अंतर्निरीक्षण विधि एक अवैज्ञानिक विधि है तथा चेतन अपने आप में इतना अस्पष्ट है कि उसका अध्ययन संभव नहीं है। व्यवहारवादियों ने ऐसे पद जैसे प्रतिमा, विचार, चिंतन को अस्वीकृत कर दिया। यद्यपि व्यवहारवादियों ने मानसिक क्रियाओं को तो अस्वीकृत कर दिया, फिर भी वैज्ञानिक विचाराधारा के उपयोग पर बल दिया। इससे संज्ञानात्मक मनोविज्ञान को आगे चलकर काफी लाभ मिला। ऐसी प्रक्रियाओं के अध्ययन के लिए वैज्ञानिक उपागमों के विकास पर बल दिया जाने लगा।

अमेरिका में विकसित व्यवहारवाद के सामानांतर में एक और स्कूल विकसित हुआ जिसे गेस्टाल्ट स्कूल (Gestalt Psychology) कहा गया। इसका मत था कि समग्र इसके अंशों के योग से कहीं अधिक होता है तथा मनुष्यों में संगठित करने की एक मौलिक प्रवृत्ति होती है। गेस्टाल्टवादियों जिनमें वर्दाइमर (Wertheimer), कोहलर (Kohler) तथा कौफ्का (Koffka) का नाम मुख्य है, ने मानव अनुभूतियों को विभिन्न तत्वों में विश्लेषण करने वालेअन्तर्निरीक्षण विधि की आलोचना की। उन लोगों का मत था कि संपूर्ण की अनुभूति उसके अलग-अलग तत्वों के योग से कही अधिक होती है। जैसे, एक त्रिभुज मात्रा तीन रेखाओं का योग नहीं होता है। गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने समस्या समाधान में सूझ की भूमिका पर व्यापक प्रकाश डाला।

सन् 1950 एवं 1960 के दशकों में हुए वैज्ञानिक परिवर्तनों से संज्ञानात्मक मनोविज्ञान को काफी सहायता मिली। मानसिक प्रक्रियाओं के वैज्ञानिक अध्ययन का मार्ग प्रशस्त होने लगा। इस दृष्टि से निम्नांकित पाँच उपलब्धियों ने चिन्तन का दृष्टिकोण परिवर्तित कर दिया।

i. वाटसन एवं अन्य व्यवहारवादियों के विचारों से असहमति व्यक्त करते हुए मनोवैज्ञानिकों ने कहा कि उनके उपागमों द्वारा मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन संभव नहीं है और इनके बिना व्यवहार की सम्यक व्याख्या नहीं की जा सकती है। मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन तथा विश्लेषण हेतु उपकरणों के विकास पर बल दिया गया। इस क्रम में मिलर इत्यादि (1960) ने एक विशेष मॉडल तैयार किया, जिसके द्वारा यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया कि व्यक्ति केवल सूचनाएँ ग्रहण ही नहीं करता अपितु उसकी छानबीन भी करता है, तदोपरान्त अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है।

ii. प्रमुख भाषा विज्ञानी चोमस्की (1957) ने मत व्यक्त किया कि भाषा अधिगम का व्यवहारवादी दृष्टिकोण उचित नहीं है। इन्होंने भाषा की योग्यता को जन्मजात बताया जबकि व्यवहारवादी (जैसे, स्किनर) इसे अर्जित कहते थे।

iii. कम्प्यूटर तथा अन्य संचार माध्यमों के विकास से भाषा के अध्ययन में अत्यधिक सहायता प्राप्त हुई।

iv. 1950 के दशक से स्मृति के क्षेत्र में काफी नये-नये शोध किये गए। शोधकर्ताओं जिनमें वॉघ एवं नारमैन (Waugh & Norman, 1965) एटकिन्सन एवं शिफ्रीन (Atkinson & Shiffrin, 1968), मर्डाक (Murdock, 1970) का नाम प्रमुख है, ने स्मृति के विभिन्न प्रकार के होने की सम्भावना जताया, स्मृति के संगठन प्रक्रियाओं पर बल दिया तथा स्मृति के विभिन्न तरह के मॉडल भी प्रस्तुत किये।

v. पियाजे (Jean Piaget) ने भी संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन्हें विकासात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र में काफी प्रतिष्ठा प्राप्त है इनके शोध कार्य संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के विकास में काफी महत्वपूर्ण है। इन्होंने संज्ञानात्मक वृद्धि एवं विकास पर काफी बल डाला। बच्चों में संज्ञानात्मक विकास पर इनका कार्य अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के विकास में व्यवहारवादियों ने जो कुछ आधार प्रस्तुत किया उसको आगे चलकर वैज्ञानिक स्वरूप नवीन तकनीकी के आधार पर दिया जा सका।

1.6सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान चुके हैं कि संज्ञानात्मक मनोविज्ञान से तात्पर्य क्या है। संज्ञानात्मक मनोविज्ञान चेतन मन का वैज्ञानिक अध्ययन है और यह सम्बन्धित होता है। हम लोग संसार के बारे में किस तरह से सूचना प्राप्त करते हैं तथा उस पर ध्यान देते हैं वैसी सूचनायें किस तरह से सम्बन्धित होती हैं और मस्तिष्क द्वारा संशाधित होती हैं तथा हम लोग किस तरह से समस्याओं के बारे में सोचते हैं, उनका समाधान करते हैं तथा भाषा निर्माण करते हैं।

संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं की क्या विशेषताएँ होती हैं इनके बारे में भी आपको इस इकाई में जानकारी प्राप्त हुई होगी। संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं की मुख्य विशेषताएँ यह होती हैं कि - संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ परस्पर सम्बन्धित होती हैं, सक्रिय रहती हैं, इनमें सूक्ष्मता तथा शुद्धता पाई जाती है, ये आंतरिक स्तर पर घटित होती हैं तथा ये धनात्मक सूचनाओं की व्याख्या अच्छे ढंग से करती हैं।

इस इकाई में संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के ऐतिहासिक परिपेक्ष्य का भी वर्णन किया गया है। ऐतिहासिक समीक्षा से स्पष्ट होता है कि सन् 1950 एवं 1960 के दशकों में वैज्ञानिक परिवर्तनों से संज्ञानात्मक मनोविज्ञान को काफी सहायता मिली।

1.7शब्दावली

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान: संज्ञानात्मक मनोविज्ञान संज्ञान का वैज्ञानिक अध्ययन है। इसका उद्देश्य प्रयोग करना तथा ऐसे सिद्धान्तों का विकास करना होता है, जिनसे इस बात की व्याख्या हो कि मानसिक प्रक्रियाओं को किस तरह से संगठित किया जाता है तथा वे किस प्रकार कार्य करती हैं।

संज्ञानात्मक प्रक्रियायें: संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं से परिवेश में उपस्थित समस्त उद्दीपकों के सम्बन्ध में संज्ञान प्राप्त होता है।

1.8स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में .... का अध्ययन किया जाता है।
2. संज्ञानात्मक मनोविज्ञान .... का वैज्ञानिक अध्ययन है।
3. संज्ञानात्मक प्रक्रिया .... से प्रारम्भ होती है।
4. प्रत्यक्षीकरणर एवं ध्यान के माध्यम से ही .... की प्रक्रिया सम्पन्न होती है।
5. संवेदी निवेश को भी .... किया जाता है।

6. संज्ञानात्मक प्रक्रियायें .... पर घटित होती हैं।
7. मनोविज्ञान की प्रथम प्रयोगशाला कब स्थापित हुई?

   (i) 1879, (ii) 1869, (iii) 1979, (iv) 1989

उत्तर :(1) संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं (2) संज्ञान (3) संवेदी निवेश (4) संवेदी निवेश

(5) परिवर्तित (6) आन्तरिक स्तर (7) 1879

1.9सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सिंह, अरुण कुमार (2011): संज्ञानात्मक मनोविज्ञान
- श्रीवास्तव, रामजी (सम्पादक) (2003): संज्ञानात्मक मनोविज्ञान
- सिंह, आर.एन. एवं भारद्वाज, एस.एस. (2010): उच्च प्रायोगिक मनोविज्ञान
- Colin Martindale (1981) : Cognition and Consciousness.
- Geryd' YDewalle (1985) : Cognition, Information Processing and Motivation.
- Kathleen M. Galotti (1999) : Cognitive Psychology in and Out of the Laboratory.
- Margaret Matlin (1982) : Cognition.

1.10निबन्धात्मक प्रश्न

1. संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के अर्थ को स्पष्ट कीजिए।
2. संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का वर्णन कीजिए।

इकाई-2 संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का विषय क्षेत्र

(Scope of Cognitive Psychology)

इकाई संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का क्षेत्र

2.4 सारांश

2.5शब्दावली

2.6 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

2.7सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.8निबन्धात्मक प्रश्न

2.1प्रस्तावना

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का क्षेत्रकाफी विस्तृत है, प्रमुख रूप से संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में, संज्ञानात्मक न्यूरोविज्ञान, प्रत्यक्षीकरण,पैटर्न पहचान, अवधान, चेतना, स्मृति, चिन्तन, विकासात्मक मनोविज्ञान, भाषा, प्रतिमावली, ज्ञान का निरूपण और मानव-बुद्धि एवं कृत्रिम बुद्धि का अध्ययन किया जाता है।

इस प्रकार स्पष्ट हुआ कि संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का कार्यक्षेत्र विस्तृत है। संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों का यह प्रयास रहा है कि इन क्षेत्रों का गहन अध्ययन करके उनके स्वरूप को ठीक ढंग से समझा जाए तथा सामान्यीकरण किया जाय।

2.2उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् जान सकेंगे कि संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के अध्ययन के कौन-कौन से क्षेत्र हैं तथा इन क्षेत्रों के सम्बन्ध में आपको विस्तृत जानकारी प्राप्त होगी।

2.3संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का क्षेत्र

सम्प्रति संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का क्षेत्र काफी व्यापक हो चुका है। इसका क्षेत्र निम्नवत् रेखांकित किया जा सकता है -

1- संज्ञानात्मक न्यूरोविज्ञान (Cognitive neuroscience)

2- प्रत्यक्षीकरण (Perception)

3- पैटर्न पहचान (Pattern recognition)

4- अवधान (Attention)

5- चेतना (Consciousness)

6- स्मृति (Memory)

7- चिन्तन (Thinking)

8- विकासात्मक मनोविज्ञान (Developmental Psychology)

9- भाषा (Language)

10- प्रतिमावली (Imagery)

11- ज्ञान का निरूपण (Representation of Knowledge)

12- मानव बुद्धि एवं कृत्रिम बुद्धि (Human intelligence and Artificial intelligence)

1. संज्ञानात्मक न्यूरोविज्ञान (Cognitive neuroscience)- यह संज्ञानात्मक मनोविज्ञान एवं न्यूरोविज्ञान का सम्मिश्रण है। इसे न्यूरोमनोविज्ञान या संज्ञानात्मक न्यूरोविज्ञान भी कहा जाता है। यह विशेषतः स्मृति, संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, समस्या समाधान, भाषा संसाधन आदि से सम्बन्धित सिद्धान्तों एवं उनके जैविक आधारों की व्याख्या करता है, न्यूरोमनोविज्ञानियों के प्रयास के फलस्वरूप ही स्मृति के प्रकार तथा भाषा संसाधन जैसे संप्रत्ययों का वैज्ञानिक अध्ययन सम्भव हो सका है।
2. प्रत्यक्षीकरण (Perception)- संवेदना को अर्थ देना प्रत्यक्षीकरण है। संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का यह प्रमुख क्षेत्र है।
3. पैटर्न पहचान (Pattern recognition)- इसके अन्तर्गत व्यक्ति अपने पर्यावरणीय उद्दीपकों का शायद ही कभी एक एकाकी संवेदी घटना के रूप में प्रत्यक्ष करता है बल्कि इन उद्दीपकों को वह एक जटिल पैटर्न (complex pattern) के रूप में प्रत्यक्षण करता है।
4. अवधान (Attention)- अवधान संज्ञानात्मक प्रक्रिया है। व्यक्ति किसी भी समय या एक समय पर सीमित वस्तुओं पर ही ध्यान दे पाता है।
5. चेतना (Consciousness)- चेतना का अध्ययन संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों के लिए काफी महत्वपूर्ण माना गया है, क्योंकि इन अध्ययनों से व्यक्ति के कई संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को समझने में मदद मिलती हैं। इसका आशय वातावरण के बारे में बोध या समझ से है।
6. स्मृति (Memory)- संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों के लिए स्मृति महत्वपूर्ण क्षेत्र है। इनके स्मृति के दो प्रकार हैं- लघुकालीन स्मृति एवं दीर्घकालीन स्मृति। लघुकालीन स्मृति में व्यक्ति सूचनाओं को करीब 20-30 सेकेण्ड तक ही संचित रख पाता है। दीर्घकाल स्मृति में व्यक्ति सूचनाओं को लम्बे समय तक या स्थायी तौर पर संचित करके रखता है।

7. चिन्तन (Thinking)- चिंतन ऐसी प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से प्राणी विभिन्न तरह की मानसिक प्रक्रियाओं द्वारा मानसिक प्रतिमाओं का निर्माण करता है। इसी प्रकार सप्रत्यय भी एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है।
8. विकासात्मक मनोविज्ञान (Developmental Psychology)- इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की विकासात्मक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। पियाजे ने इस क्षेत्र में विशेष कार्य किया है।
9. भाषा (Language)- भाषा संप्रेषण का सशक्त माध्यम है। यह योग्यता मात्र मनुष्यों में पाई जाती है। चौमस्की ने इस क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है।
10. प्रतिमावली (Imagery)- मानसिक प्रतिमावली को परिभाषित करते हुए यह कहा जाता है कि किसी अनुपस्थित वस्तु या घटना का मानसिक चित्रण करना ही मानसिक प्रतिमावली है। ऐसे अध्ययनों से संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों को स्मृति का स्वरूप समझने में सहायता प्राप्त हुई है। सूचनाओं को स्मृति में शब्दिक तथा काल्पनिक में से किसी रूप में या दोनों ही रूप में संचित किया जा सकता है। उसे द्विकूट संकेतन परिकल्पना कहते हैं।
11. ज्ञान का निरूपण (Representation of Knowledge)- ज्ञान के निरूपण से तात्पर्य है कि सूचनाओं का संकेतीकरण किस तरह से होता है और मस्तिष्क में संचित सूचनाओं के साथ वे किस तरह से संयोजित होती हैं। यह कार्य संप्रत्यात्मक निरूपण तथा संज्ञानात्मक शब्दार्थ संरचना के आधार पर होता है।
12. मानव बुद्धि एवं कृत्रिम बुद्धि (Human intelligence and Artificial intelligence)- बुद्धि एक प्रमुख संज्ञानात्मक प्रक्रिया है जिसमें अनेक मानसिक क्षमताएँ सम्मिलित होती हैं। सचमुच में यह एक सार्वभौम क्षमता है यह समायोजन, चिन्तन तथा उद्देश्यपरक व्यवहार करने में सहायक है। यह क्षेत्र भी संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में सम्मिलित है।

कृत्रिम बुद्धि (Artificial intelligence) का आशय कम्प्यूटर उत्पन्न उत्पादों (computer produced output) से है, जिसे यदि मानव द्वारा किया जाता तो उसे बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य कहा जाता है। कृत्रिम बुद्धि कम्प्यूटर विज्ञान की ऐसी शाखा है जिसका सम्बन्ध कम्प्यूटर के विकास (हार्डवेयर) तथा कार्यक्रम (सॉफ्टेवयर) से होता है तथा जो मानव के संज्ञानात्मक कार्यो का अनुकरण करता है। कृत्रिम बुद्धि के माध्यम से संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक प्रत्यक्षीकरण, भाषा, समस्या समाधान आदि जैसी मानसिक प्रक्रियाओं का गहन अध्ययन करके उसके स्वरूप की विशिष्ट व्याख्या करते हैं।

फिर भी इस विधि के कुछ अलाभ है जो इस प्रकार है -

(i) ऐसा मत है कि अभी कुछ संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ ऐसी हैं जिनके बारे में बहुत विस्तृत पता नहीं है। अतः ऐसी प्रक्रियाओं का अध्ययन कम्प्यूटर प्रोग्राम से नहीं कर सकते हैं।

(ii) इसमें कम्प्यूटर एवं मानव स्मृति को समान होने की बात की जाती है, जबकि ऐसा वास्तव में नहीं है। कम्प्यूटर तो कार्य करने के लिए कार्यक्रमित (Programmed) होता है, परन्तु मनुष्यों के साथ ऐसा नहीं है।

(iii) यह भी उल्लेखनीय है कि मानव मस्तिष्क का दैहिक आधार कम्प्यूटर के वैद्युतीय क्षेत्र से काफी भिन्न होता है। अर्थात् मस्तिष्क एवं कम्प्यूटर दैहिक रूप से एक दूसरे से काफी भिन्न होते हैं। परन्तु फिर भी कार्य के दृष्टिकोण से एक-दूसरे के काफी समान है।

2.4 सारांश

आज संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का क्षेत्र काफी विस्तृत हो चुका है, संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के अन्तग्रत संज्ञानात्मक न्यूरोविज्ञान, प्रत्यक्षीकरण, पैटर्न पहचान,अवधान, चेतना, स्मृति, चिन्तन, विकासात्मक मनोविज्ञान, भाषा, प्रतिमावली, ज्ञान का निरूपण एवं मानव बुद्धि एवं कृत्रिम बुद्धि का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया जाने लगा है।

2.5शब्दावली

- **संज्ञानात्मक न्यूरोविज्ञान:**यह न्यूरोविज्ञान तथा संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का सम्मिश्रण है। इसे न्यूरो मनोविज्ञान या संज्ञानात्मक मनोविज्ञान भी कहा जाता है।
- **प्रत्यक्षीकरण:**संवेदना को अर्थ प्रदान करना ही प्रत्यक्षीकरण है।
- **पैटर्न पहचान:**इसके अन्तर्गत संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों द्वारा विशेष प्रकार का प्रयोग करके उन संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का प्रयास किया जाता है जिनके माध्यम से व्यक्ति जटिल उद्दीपक पैटर्न को समझता है तथा उसे वर्गीकृत करता है।
- **अवधान:**अवधान वह मनोवैज्ञानिक चयनात्मक प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम परिवेश में उपस्थित अनेक उद्दीपकों में से केवल उन्हीं उद्दीपकों को चुनते हैं तथा उनके प्रति प्रतिक्रिया करते हैं जिसका वर्तमान रुचियों एवं आवश्यकताओं से सम्बन्ध होता है।
- **चेतना:**इसका तात्पर्य बाह्य या आन्तरिक परिस्थितियों की वर्तमान जानकारी से होता है।
- **स्मृति:**समयोपरान्त कूट संकेतन, भण्डारण एवं पुनरुद्धार के माध्यम से सूचनाओं की धारणा किये रहना स्मृति है।
- **चिन्तन:**यह मस्तिष्क में चलने वाली एक मानसिक प्रक्रिया है। यह किसी सूचना के संगठित करने तथा समझने एवं अन्य किसी को सम्प्रेषित करने में घटित होती है।
- **विकासात्मक मनोविज्ञान:**यह मनोविज्ञान की एक शाखा है, इसका उद्देश्य प्राणी में जीवनपर्यन्त होने वाले हर प्रकार के परिवर्तनों को स्पष्ट करना है।
- **भाषा:**भाषा सम्प्रेषण का एक सशक्त माध्यम है। व्यापक अर्थों में भाषा का तात्पर्य निःसन्देह ऐसे साधन से है, जिसके द्वारा अर्थ एवं भाव का लोगों के बीच सम्प्रेषण होता है।

- **प्रतिमावली:**किसी अनुपस्थित वस्तु या घटना का मानसिक चित्राण करना ही मानसिक प्रतिमावली कहलाता है।
- **ज्ञान का निरुपण:**इससे तात्पर्य है कि सूचनाओं का संकेतीकरण किस तरह से होता है और मस्तिष्क में संचित सूचनाओं के साथ वे किस तरह से संयोजित होती है।
- **मानव बुद्धि एवं कृत्रिम बुद्धि:**मानव बुद्धि एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया है, जिसमें कई तरह की क्षमताएँ शामिल होती हैं। कृत्रिम बुद्धि से तात्पर्य उन सभी कम्प्यूटर उत्पन्न उत्पादकों से होता है जिसे यदि मानव द्वारा किया जाता तो उसे बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य कहा जाता है। कृत्रिम बुद्धि कम्प्यूटर विज्ञान की एक शाखा है।

2.6स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के कुल कितने क्षेत्र हैं?

(1) 10 (2) 08 (3) 11 (4) 12

2) संवेदना को अर्थ देना .... है।

3) अवधान .... प्रक्रिया है।

4) चेतना का आशय .... से है।

5) किसी अनुपस्थित वस्तु या घटना का मानसिक चित्रण करना ही .... है।

उत्तर:(1)12 (2) प्रत्यक्षीकरण (3) संज्ञानात्मक (4) बोध या समूह (5) मानसिक प्रतिमावली

2.7सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सिंह, अरुण कुमार (2011): संज्ञानात्मक मनोविज्ञान
- श्रीवास्तव, रामजी (सम्पादक) (2003): संज्ञानात्मक मनोविज्ञान
- सिंह, आर.एन. एवं भारद्वाज, एस.एस. (2010): उच्च प्रायोगिक मनोविज्ञान
- Colin Martindale (1981) : Cognition and Consciousness.
- Geryd' YDewalle (1985) : Cognition, Information Processing and Motivation.
- Kathleen M. Galotti (1999) : Cognitive Psychology in and Out of the Laboratory.
- Margaret Matlin (1982) : Cognition.

2.8निबन्धात्मक प्रश्न

1. संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्रों का वर्णन कीजिए।

2. टिप्पणी लिखिए -

(i) संज्ञानात्मक न्यूरोविज्ञान, (ii) मानव बुद्धि एवं कृत्रिम बुद्धि।

इकाई-3 संज्ञानात्मक मनोविज्ञान कीविधियाँ

(Methods of Cognitive Psychology)

इकाई संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के उपागम

3.4 संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की विधियाँ

3.5सारांश

3.6शब्दावली

3.7स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.9निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में मुख्य रूप से संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। इन प्रक्रियाओं के माध्यम से व्यक्ति वातावरण के भौतिक ऊर्जा को तंत्रकीय ऊर्जा में बदलता है और उसका विशेष अध्ययन करता है। संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं की कुछ विशेषताएँ हैं जिनका अध्ययन करने पर ही संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के स्वरूप को ठीक ढंग से समझा जा सकता है। संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के अध्ययन के लिये दो तरह के, उपागमों का प्रयोग किया जाता है, ये उपागम हैं - 1- सूचना संसाधन उपागम, 2. सम्बन्धवादी उपागम। संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का कार्य क्षेत्र भी विकसित है।

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का अध्ययन करने के लिए वैसे तो कई विधियाँ हैं, लेकिन प्रमुख रूप से दो विधियों का उपयोग किया जाता है जिनका आगे वर्णन किया जायेगा।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप समझ सकेंगे:

- संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के उपागम कौन-कौन से हैं?
- संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की विधियाँ कौन-सी हैं?

3.3संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के उपागम

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के अध्ययन के लिये मुख्य रूप से दो उपागमों का प्रयोग किया जाता है -

1- सूचना संसाधन उपागम

2- सम्बन्धवादी उपागम।

1- सूचना संसाधन उपागम

मानव वातावरण से सूचनाओं को कम्प्यूटर की तरह ग्रहण करता है। इसके बाद उन्हें एक अवस्था से दूसरी अवस्था होते हुये एक क्रम में संसाधित करता है और तब अन्त में किसी निर्णय पर पहुँचता है तथा फिर कोई खास अनुक्रिया करता है। सूचना संसाधन के इस दृष्टिकोण को 'कम्प्यूटर रूपक' कहा जाता है। इस उपागम को अक्सर एक अमूर्त विश्लेषण के रूप में वर्णित किया जाता है। अमूर्त विश्लेषण से अर्थ यह है कि इस उपागम में तंत्रकीय घटनाओं की व्याख्या स्पष्ट नहीं होती है। संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक मानसिक प्रक्रियाओं का सूचना संसाधन उपागम के दृष्टिकोण से जो वर्णन करते हैं उसकी तुलना एक कम्प्यूटर प्रोग्रामर से की जाती है। संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक किसी मानसिक प्रक्रिया के पीछे होने वाले तंत्रकीय आधारों से कोई सम्बन्ध नहीं रखते, बल्कि उनका सम्बन्ध केवल इस बात से होता है कि अमुक तरह की सूचना मिलने पर संज्ञानात्मक या मानसिक प्रक्रियाओं का संचालन किस प्रकार से होता है।

वास्तव में सूचना संसाधन उपागम में तीन प्रमुख पूर्व कल्पनायें होती हैं-

1- संज्ञान की क्रमिक अवस्थाओं की एकश्रृन्खलामें विश्लेषित करके समझा जा सकता है।

2- प्रत्येक अवस्था पर सूचनाओं की प्राप्ति पर अनोखी प्रक्रियायें सम्पन्न होती हैं।

3- इस उपागम में प्रत्येक अवस्था अपने विगत अवस्थाओं से सूचनायें प्राप्त करती हैं और तब अपना उसका कार्य करती हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सूचना संसाधन उपागम द्वारा संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का एक अमूर्त एवं क्रमिक विश्लेषण होता है, संज्ञानात्मक तंत्र एक प्रमाणीय संगठन के रूप में कार्य करता है, जिसमें कई छोटी-छोटी इकाईयां होती हैं, जो एक दूसरे से भिन्न होती है और स्वतंत्र रूप से कार्य करती हैं।

2- सम्बन्धवादी उपागम

इस उपागम की जड़ें स्नायुविक तंत्र में निहित हैं, उसमें मानसिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण तंत्राकीय घटनाओं तथा उनके आपसी सम्बन्धों पर आधारित होती हैं। अर्थात् सम्बन्धवादी उपागम द्वारा मस्तिष्कीय रूपक का दृष्टिकोण अपनाया जाता है। इस उपागम का आधार तंत्रकीय एवं गणितीय होता है। इस उपागम के समर्थकों का मत है कि यह मॉडल (उपागम) तंत्रकीय घटनाओं पर आधारित होता है। यह अमूर्त नहीं होता है। इसमें मानसिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण जो तंत्राकीय घटनाओं पर आधारित होता है, किया जाता है। इस उपागम में मानसिक प्रक्रियाओं

का विश्लेषण क्रमिक संसाधन से न होकर समानान्तर संसाधन द्वारा होता है। इस प्रक्रिया में मानसिक प्रक्रियायें एक साथ एक से अधिक संज्ञानात्मक कूट संकेत में परिवर्तित होती हैं। Feldman (1985) के अनुसार, सम्बन्धवादियों का मुख्य मत यह भी है कि बहुत सारी सार्थक संज्ञानात्मक प्रक्रियायें एक सेकेण्ड के भीतर ही सम्पन्न की जा सकती हैं। इस उपागम की यह भी मान्यता है कि न्यूरोन का अन्य न्यूरोन के साथ एक पदानुक्रमिक सम्बन्ध नहीं होता है। इसके अलावा इसमें संज्ञानात्मक तंत्रा का स्वरूप प्रमाणीय नहीं होता है अर्थात् उसे छोटे-छोटे भागों में नहीं बांटा जा सकता है। प्रत्येक संज्ञानात्मक कार्य में तंत्रकीय एवं संज्ञानात्मक तंत्र एक सम्पूर्ण इकाई के रूप में कार्य करता है। इस प्रकार मानव मस्तिष्क तथा हमारा संज्ञानात्मक तंत्र एक पूर्ण इकाई के रूप में होकर एक समय में एकसे अधिक कार्य करते हैं।

3.4 संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की विधियाँ

संज्ञानात्मक प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करने के लिए संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में मुख्य रूप से दो प्रकार की विधियों का उपयोग किया जाता है - 1. प्रयोगात्मक विधि 2. कम्पयूटर आधारित विधि।

1- प्रयोगात्मक विधि-

इस विधि में संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक कुछ परिवर्त्यों में परिवर्तन करके उसके दूसरे चरों पर पड़ने वाले प्रभाव का निरीक्षण करते हैं। संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के अध्ययन में मनोवैज्ञानिक द्वारा विशेष रूप से यह जानने का प्रयास किया जाता है कि सम्बद्धमानसिक प्रक्रिया को पूरा करने में व्यक्ति किस तरह की त्रुटि कर रहा है। फ्रोमकिम तथा गैरेट ने इसे एक उदाहरण द्वारा समझाने का प्रयास किया है। मानलीजिये किसी व्यक्ति को किसी भाषण के एक अंश में Current argument कहना है और उसके बदले में गलती से An arrent curgumentCorrent कहता है। इस ढंग की त्रुटि से हमें भाषण में सम्मिलित संज्ञानात्मक प्रक्रिया के बारे में महत्वपूर्ण सूचना मिलती है। इस त्रुटि को ध्यान में रखकर यह कहा जा सकता है कि ऐसे टि पदस्विच के कारण हुयी है। Current का प्रथम पद argument के प्रथम पद के साथ मिल जाने से यह त्रुटि उत्पन्न हुयी है। इससे हम त्रुटि इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि मनुष्य मस्तिष्क शब्दों का निर्माण एक-एक पद को संयोजित करके तैयार करता है। उपस्थित किये गये उद्दीपकों के प्रति प्रतिक्रिया समय का मापन करके भी संज्ञानात्मक प्रक्रिया के बारे में जाना जाता है।

इस प्रकार स्पष्ट हुआ कि संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक त्रुटियों के ढंग तथा प्रतिक्रिया काल जैसे सूचकांकों के आधार पर मानसिक प्रक्रियाओं के बारे में महत्वपूर्ण निर्णय लेने में सक्षम हो पाता है।

2- कम्प्यूटर आधारित विधि-

इस विधि में संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक कम्प्यूटर का उपयोग करके संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का अध्ययन करना है। सूचना संसाधन उपागम एवं सम्बन्धवादी उपागम इन दोनों के ही समर्थक अपने अध्ययनों में इस विधि

का उपयोग करते हैं। चूँकि मानव मस्तिष्क कम्प्यूटर की तरह कार्य करता है। इसलिये आसानी से हमें मानसिक प्रक्रिया के स्वरूप के बारे में जानकारी हो जाती है। वैसे इस विधि की काफी आलोचना भी हुयी है। कुछ लोगों का मत है कि कुछ ऐसी संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ हैं जिनकी विस्तृत जानकारी अभी तक प्राप्त नहीं हुई है। इसलिये ऐसी प्रक्रियाओं का अध्ययन कम्प्यूटर प्रोग्राम से नहीं हो सकता है। मस्तिष्क एवं कम्प्यूटर दैहिक रूप से एक-दूसरे से भिन्न होते हैं, इससे भी मानसिक प्रक्रियाओं को समझने में कठिनाई होती है।

3.5सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान चुके हैं कि संज्ञानात्मक उपागम कौन-कौन से हैं तथा संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के अध्ययन के लिये कौन सी विधियाँ हैं। संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के मुख्य रूप से दो उपागम होते हैं- सूचना संसाधन उपागम तथा सम्बन्धवादी उपागम। इसी प्रकार संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का अध्ययन करने के लिए प्रयोगात्मक विधि तथा कम्प्यूटर आधारित विधि का प्रयोग किया जाता है।

3.6शब्दावली

- **सूचना संसाधन उपागम:** इसमें संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का एक अमूर्त एवं क्रमिक विश्लेषण होता है। संज्ञानात्मक तंत्र एक प्रमाणीय संगठन के रूप में कार्य करता है, जिसमें कई उपइकाइयां होती हैं जो एक दूसरे से भिन्न होती हैं और स्वतन्त्र रूप से कार्य करती हैं।
- **सम्बन्धवादी उपागम:** इस उपागम में मानसिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण क्रमिक संसाधन से न होकर समानान्तर संसाधन द्वारा होता है। समानान्तर संसाधन की प्रक्रिया में मानसिक प्रक्रियायें एक साथ एक से अधिक संज्ञानात्मक कूट संकेत में परिवर्तित होती हैं।
- **संज्ञानात्मक मनोविज्ञानकी प्रयोगात्मक विधि:** इस विधि में मनोवैज्ञानिक कुछ चरों में परिवर्तन करते हैं और उस पर पड़ने वाले प्रभाव का दूसरे चरों पर प्रेक्षण करते हैं। इसमें उपस्थित किये गये उद्दीपकों के प्रति प्रतिक्रिया समय का मापन करके भी संज्ञानात्मक प्रक्रिया के बारे में जानते हैं।
- **कम्प्यूटर आधारित विधि:** इस विधि में संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक कम्प्यूटर का उपयोग करके संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं एवं सम्बन्धित तंत्रकीय प्रक्रियाओं का अध्ययन करते हैं।

3.7स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1- संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में .... का अध्ययन करते हैं।

2- संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के .... उपागम हैं।

3- सूचना संसाधन प्रक्रिया के दृष्टिकोण से संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक जो मानसिक प्रक्रियाओं का वर्णन करते हैं, उसकी तुलना .... से की जाती है।

4- सम्बन्धवादी उपागम में मानसिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण .... तथा उनके अपसी सम्बन्धों पर आधारित होता है।

5- संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की .... प्रमुख विधियाँ हैं।

6- संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक कम्प्यूटर का उपयोग करके .... एवं सम्बन्धित तंत्र की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करते हैं।

7- मस्तिष्क एवं कम्प्यूटर .... एक-दूसरे से काफी भिन्न होते हैं।

उत्तर: (1) संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं (2) दो (3) एक कम्प्यूटर प्रोग्रामर

(4) तंत्रकीय घटनाओं (5) दो (6) संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं

(7) दैहिक रूप से

3.8सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सिंह, अरुण कुमार (2011): संज्ञानात्मक मनोविज्ञान
- श्रीवास्तव, रामजी (सम्पादक) (2003): संज्ञानात्मक मनोविज्ञान
- सिंह, आर.एन. एवं भारद्वाज, एस.एस. (2010): उच्च प्रायोगिक मनोविज्ञान
- Colin Martindale (1981) : Cognition and Consciousness.
- Geryd' YDewalle (1985) : Cognition, Information Processing and Motivation.
- Kathleen M. Galotti (1999) : Cognitive Psychology in and Out of the Laboratory.
- Margaret Matlin (1982) : Cognition.

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के उपागमों का वर्णन कीजिए।
2) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की विधियों का वर्णन कीजिए।
3) टिप्पणी लिखिए -

(क) सूचना संसाधन उपागम।

(ख) कम्प्यूटर आधारित विधि।

इकाई-4 मनोभौतिकी का अर्थ, वेबर और फेकनर का नियम

(Meaning of Psychophysics; Law of Weber and Fechner)

इकाई संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 अर्थ एवं स्वरुप
4.4 मनोभौतिकी की मूलभूत समस्याएँ
4.5 वेबर का नियम
4.6 फेकनर का नियम
4.7 सारांश
4.8 शब्दावली
4.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
4.10सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.11निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

मनोभौतिकी शब्द से सामान्य परिचय होने के पूर्व कुछ प्राथमिक बातों का उल्लेख कर देना वांछनीय ही नहीं अपितु आवश्यक भी है।वस्तुस्थिति यह है कि हम लोग सामान्यतः स्नातक स्तर से ही मनोविज्ञान का अध्ययन करते आ रहे हैं और इस बात से पूर्ण अवगत हैं कि मनोविज्ञान को पहले आत्मा और मन का और फिर चेतना का विज्ञान माना जाता था। स्वाभाविक था कि उस समय प्रयोगों के लिए कोई स्थान नहीं था। दूसरे व्यक्तियों की आत्मा, मन तथा चेतनता का अध्ययन करना असंभव था साथ ही बहुत सी बातों के अध्ययन के लिए मनुष्यों को प्रयोज्य (Subject) के रूप में तैयार नहीं किया जा सकता, जिससे जानवरों आदि का अध्ययन आवश्यक महसूस किया जाने लगा। कुछ समय बाद, मनोविज्ञान को मानसिक क्रियाओं और अंततः व्यक्ति के व्यवहार के अनुभव का अध्ययन करने वाला विज्ञान माना जाने लगा परन्तु मनोविज्ञान में जब व्यवहार की बात की जा रही थी तभी मनोभौतिकी (Psychophysics) भी एक महत्वपूर्ण कारक (Factor) के रूप में उद्वेलित हो रहा था।

4.2 उद्देश्य

मनोभौतिकी (Pshychophysics) मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसके अंतर्गत मानसिक (Mental) और भौतिक (Physical) तथ्यों का एक साथ अध्ययन किया जाता है। अत्यंत प्राचीन काल से ही दर्शन शास्त्रियों ने

'मन' और 'शरीर' के सम्बन्ध को तार्किक आधार पर समझने का प्रयास किया था। जिसमें डेकोर्ट का अंतर्क्रियावाद (Decartes' interactionalism), लाइवनीज़ का मनोभौतिक समानान्तरवाद (Leibnitz's Psycho-physical Parallelism), डेमोक्रिट्स का भौतिकवाद (Democrates' materialism) उल्लेखनीय हैं। इन दार्शनिकों ने मन तथा शरीर के बीच मात्रात्मक संबंधों के निर्धारण का प्रयत्न किया था। इन्होनें 'मन' को मानसिक घटनाओं तथा 'शरीर' को भौतिक घटनाओं के रूप में प्रयुक्त किया उन्होंने यह जानने का प्रयत्न किया कि मापन योग्य उद्दीपक विशेषताओं और उनसे उत्पन्न संवेदनाओं के बीच किस प्रकार के नियम पूर्ण सम्बन्ध हैं। इसी मूल समस्या का हल प्राप्त करने के लिए प्रयोगात्मक विज्ञान की शाखा मनोभौतिकी की स्थापना की गयी।

मनोभौतिकी काप्रारंभ G.T. Fechner (1801-1887) की पुस्तक 'Element-der-Psychophysics' के 1860 में प्रकाशन से हुआ। चूँकि यह पुस्तक फ्रांसीसी भाषा में प्रकाशित हुई थी, जिसका हिंदी रूपांतरण 'मनोभौतिकी के मूल तत्व' (Element of Psychophysics) है। मनोभौतिकी में मन अनुक्रिया (Response) तथा शरीर में संबंधों का अध्ययन किया गया। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मनोभौतिकी में भौतिक (Physical) एवं मानसिक (Mental) प्रक्रियाएं सम्मिलित हैं। भौतिक प्रक्रिया का तात्पर्य उत्तेजना तथा मानसिक प्रक्रिया का तात्पर्य संवेदना से है। मनोभौतिकी में उद्दीपक (उत्तेजना) तथा संवेदना के बीच मात्रात्मक संबंधों का अध्ययन किया जाता है।

4.3 अर्थ एवं स्वरुप

मनोभौतिकी की परिभाषाएँ (Definition of Phsycophysics):

मनोभौतिकी शब्द को सर्वप्रथम G.T. Fechner ने अपनी पुस्तक 'मनोभौतिकी के मूल तत्व' में परिभाषित करते हुए लिखा है कि – "मनोभौतिकी वह सत्य विज्ञान है जो शरीर एवं मन के बीच प्रकार्यात्मक संबंधों की निर्भरता का अध्ययन करता है।" (Psychophysics is the true science of functional relations between body and mind).

Guilford (1954) के अनुसार – "मनोभौतिकी वह विज्ञान है जो भौतिक घटनाओं और उनसे सम्बंधित मनोवैज्ञानिक घटनाओं के बीच मात्रात्मक संबंधों की निर्भरता का अध्ययन करता है।" (Psychophysics has been regarded as the science that investigates the Quantitative Relationships between physical events and corresponding psychological events).

James Drever (1968) के अनुसार –"मनोभौतिकी प्रायोगिक मनोविज्ञान की वह शाखा है जो भौतिक उद्दीपकों तथा सांवेदिक घटनाओं के बीच प्रकार्यात्मक तथा मात्रात्मक संबंधों का अन्वेषण करता है।" (Psychophysics is that branch of Experimental psychology which investigates that functional and Quantitative relations between physical Stimuli and sensory events).

Chaplin (1975) के अनुसार –"मनोभौतिकी मनोविज्ञान की एक शाखा है जो उद्दीपक मात्राओं, उद्दीपक भिन्नताओं तथा उनके अनुरूप संवेदी प्रक्रियाओं के बीच संबंधों का अनुसन्धान करता है।" (Pshychophysics is the branch of psychology which investigates Relationship between Stimulus magnitudes, StimulusDifferences and their corresponding sesory processes).

Candland (1968) के अनुसार –"मनोभौतिकी उद्दीपक एवं उन उद्दीपकों के प्रति मनोवैज्ञानिक अनुक्रियाओं के सम्बन्ध स्थापित करने से सम्बंधित है।" (Psychophysics is concerned with establishing Relationship between Stimuli and the psychological responses to these Stimuli).

English & English (1950) के अनुसार –"मनोभौतिकी उद्दीपक के भौतिक गुणों एवं संवेदनाओं के परिणात्मक गुणों के संबंधों को अध्ययन करता है।" (Pshychophysics is the study of the relation between the physical attributes of the Stimulus and the Quantitative attributes of sensation).

इन परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मनोभौतिकी मन तथा शरीर (शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं) के बीच प्रकार्यात्मक तथा मात्रात्मक संबंधों का अध्ययन करता है। दूसरे शब्दों में कहें तो "भौतिक उदीपक तथा उसके कारण किसी मानव प्रेक्षक में उत्पन्न होने वाली संवेदनाओं के बीच संबंधों का अध्ययन ही मनोभौतिकी है।"

आजकल मनोभौतिकी (Pshychophysics) को प्रयोगात्मक मनोविज्ञान (Experimental Psychology) की एक शाखा के रूप में माना जाता है और इसमें उद्दीपक (Stimulus) तथा उससे उत्पन्न होने वाली अनुभूतियों (Experiences) के परिणात्मक संबंधों (Qualitative Relationship) का अध्ययन किया जाता है।

जैसे क्या उद्दीपक की तीव्रता (Intensity) में वृद्धि होने से अनुभूति (Experience) में भी तीक्ष्णता आती है? यदि आती है तो! क्या उसी अनुपात में या उससे अधिक या कम अनुपात में, इन सब प्रश्नों का अध्ययन मनोभौतिकी में किया जाता है उदाहरणस्वरुप, यदि किसी बंद कमरे में ध्वनि की तीव्रता के 100 HZ से बढ़ाकर 200 HZ कर दिया जाता है तो क्या इससे सुनने की अनुभूति पहले से बढ़कर दुगनी हो जायेगी या कम हो जायेगी, इस प्रकार के प्रश्नों का अध्ययन मनोभौतिकी में करके एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचा जाता है।

4.4मनोभौतिकी की मूलभूत समस्याएँ

उद्दीपक को परिभाषित करना मनोभौतिकी की मूल समस्या है, क्यों कि मनोभौतिकी का मुख्य उद्देश्य उद्दीपक और अनुक्रियाओं के बीच मात्रात्मक संबंधों को ज्ञात करना है। उद्दीपक (Stimulus) की वह न्यूनतम मात्र क्या

है जिसको प्राणी ग्रहण कर सके तथा अनुक्रिया (Response) कर सके? प्रयोज्य (Subject) किसी उद्दीपक का मूल्यांकन तथा विभिन्न उद्दीपकों की तुलना कितनी परिशुद्धता से कर सकता है? दो उद्दीपकों में न्यूनतम कितना अंतर होने पर भी वे एक समान प्रतीत होते हैं? उपर्युक्त समस्त प्रश्नों को उद्दीपक (Stimulus) और उससे उत्पन्न संवेदना (Sensory) के सम्बन्ध में उठाये गए हैं। इसी प्रकार के अन्य प्रश्न भी सम्बन्ध में प्रस्तुत किये जा सकते हैं जो सम्मिलित रूप से मनोभौतिकी की समस्याएं कहलाती हैं ऐसी समस्याएं निम्नांकित हैं।

अभिज्ञान से सम्बंधित समस्याएं (Detection Probems) -

प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय (Sense Organ) को उत्तेजित करने के लिए एवं न्यूनतम या अत्यंत तीव्रता के उद्दीपक की ज़रूरत होती है। यदि उद्दीपक इस न्यूनतम तीव्रता का होता है तब तो व्यक्ति इसकी पहचान (Detection) कर लेता है। उद्दीपक के इस न्यूनतम स्तर को सीमान्त उद्दीपक (ThresholdStimulus) कहा जाता है। कुछ उद्दीपक की तीव्रता इस सीमान्त उद्दीपक से ऊपर या ज़्यादा होती है। पहले प्रकार के उद्दीपक को अवचेतन उद्दीपक (Subliminal Stimulus) तथा दूसरे प्रकार के उद्दीपक को अधिसीमा उद्दीपक (Supraliminal Stimulus) कहा जाता है। अल्पतम उद्दीपकों की पहचान से सम्बंधित अध्ययन करते समय कुछ ख़ास-2 समस्याएं होती हैं। जैसे – किसी उद्दीपक की पहचान करने के लिए न्यूनतम स्तर (Lowest Level) कौन सा होगा? किस तरह के उद्दीपक (Stimulus) का अध्ययन उपयुक्त होगा? उद्दीपक का न्यूनतम स्तर कितना हो कि उससे ऊपर के स्तर के उद्दीपक को आसानी से पहचान कर सके, आदि। इन समस्याओं की जटिलता इस कारण से और बढ़ जाती है कि अनुक्रिया (Response) उत्पन्न करने के लिए उद्दीपक का जो अल्पतम स्तर (Minimal Level) होता है वह परिस्थिति के अनुसार बदलता रहता है।

इसे उदाहरण द्वारा समझें – अँधेरे कमरे में हल्की रोशनी को भी तुरंत देख लेते हैं, परन्तु यदि कमरा में पहले से ही काफ़ी रोशनी है तो उस हल्की रोशनी को संभवतः हम देख नहीं पाते हैं, उसी प्रकार किसी ध्वनिरोधी कमरे (Soundproof Room) में साधारण तीव्र ध्वनि को आसानी से सुना जा सकता है परन्तु ऐसे कमरे में जहाँ शोरगुल काफ़ी हो रहा है उसी ध्वनि को सुनने लायक होने के लिए उसे काफ़ी तीव्र (Intense) होना आवश्यक है।

मनोवैज्ञानिकों के अध्ययनों में दो प्रकार के अभिज्ञानों (Detections) की चर्चा की जाती है।

- निरपेक्ष सीमान्त या देहली (Absolute Threshold or Limen)
- भिन्नता सीमान्त या देहली (DifferentialThreshold or Limen)

(i) निरपेक्ष सीमान्त या देहली (Absolute Threshold or Limen) -

निरपेक्ष सीमान्त (Absolute Threshold) के लिए RL शब्द का प्रयोग अधिक किया जाता है जो जर्मन “रिज लाईमैन” (Reiz Limen) का संक्षिप्त रूप है। RL से तात्पर्य उस न्यूनतम उद्दीपक मान (MinimalStimulusValue) से होता है जो व्यक्ति में अनुक्रिया उत्पन्न करने में समर्थ होता है। प्राणी की

ज्ञानेन्द्रिय (Sense Organs) की संवेदनशीलता (Sensitivity) में घट-बढ़ (Fluctuation) होती रहती है। अतः एक ही व्यक्ति के लिए RL हमेशा एक समान नहीं होता है, यही कारण है कि RL को मनोवैज्ञानिकों ने सांख्यिकीय रूप से परिभाषित किया है और कहा है कि RL वह उद्दीपक मान है जो 50% प्रयास में अनुक्रिया उत्पन्न करता है और 50% प्रयास में अनुक्रिया उत्पन्न नहीं करता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि RL कई प्रयासों में व्यक्ति द्वारा उद्दीपक के बारे में किये निर्णयों का माध्य (Mean) होता है। उदाहरणस्वरुप, मान लें कि कोई प्रयोगकर्ता प्रयोज्य से लिए गए भिन्न-भिन्न ध्वनि की की तीव्रता का RL ज्ञात करना चाहता है। ऐसी परिस्थिति में वह प्रयोज्य के ध्वनि के भिन्न-भिन्न तीव्रता स्तर को उपस्थित कर उसे यह बतलाने के लिए कहेगा कि उसने उस ध्वनि को सुना या नहीं। जब ध्वनि की तीव्रता काफ़ी कम होगी तो प्रयोज्य को ध्वनि सुनाई नहीं देगी। जब ध्वनि की तीव्रता का स्तर थोड़ा और अधिक होगा तो प्रयोज्य को कभी ध्वनि सुनाई देगी और कभी नहीं। यदि ध्वनि की तीव्रता का स्तर थोड़ा और अधिक बढ़ा दिया जाये तो ध्वनि स्पष्टतः सुनाई देगी। इस प्रकार प्रयोज्य का निर्णय कई प्रयासों में प्रयोगकर्ता प्राप्त करता है और फिर इसका माध्य (Mean) ज्ञात कर दिया जाता है और वही RL कहलाता है।

(ii) भिन्नता या विभेद सीमान्त या देहली या जे.एन.डी. (Diffential discrimiation Threshold or Limen or JustNoteableDifference–J.N.D.) -

भिन्नता या विभेदन सीमान्त जिसको विभेदक सीमान्त DL जो (DifferentialLimen) का संक्षिप्त रूप है, तथा विभेदन सीमन को न्यूनतम भेद J.N.D. जो (JustNoteableDifference) भी कहा जाता है।

पोस्टमैन तथा ईगन ने (Postman & Egan) ने 1949 में D.L. को परिभाषित करते हुए कहा है कि "वह उद्दीपक अंतर जो 50% प्रयास (trails) में भिन्नता निर्णय उत्पन्न करता है को विभेदक सीमान्त कहा जाता है।" (The DifferentialThreshold is defined as that StimulusDifference which gives rise to judgment at Difference in 50% of the time.) । उदाहरणस्वरुप, अगर प्रयोज्य को दो ध्वनि जिसकी आपस में तीव्रता का अंतर बहुत ही कम है, दिया जाता है तो संभवतः वह इस अंतर को पहचान नहीं पाएगा या कभी पहचान पाएगा और कभी नहीं। परन्तु यही दोनों ध्वनि की तीव्रता के अंतर को अधिक कर दिया जाता है तो वैसी परिस्थिति में वह इस अंतर को स्पष्ट पहचान लेगा। दूसरा उदाहरण – विभेदन सीमान्त को देखें तो यदि किसी प्रयोगी की हथेली पर सौ ग्राम वज़न की वस्तु में अतिरिक्त पांच ग्राम का वज़न रखने पर प्रयोज्य को उससे अधिक भारी (heavier than) का अनुभव होता है तो 100 ग्राम वज़न के लिए 5 ग्राम का अतिरिक्त भार J.N.D. कहा जायेगा। इसी तरह किस उत्तेजना मूल्य के उस लघुतम अंतर को J.N.D. कहा जाता है जिसके कारण समान सांवेदनिक मार्ग (Same Sensory Channel) से उत्पन्न अनुभवों में विभेद या भिन्नता का आभास होता है।

उपर्युक्त दोनों प्रकारों के सीमान्तों या देहलियों का निर्धारण किन बातों पर निर्भर करता है, इस सम्बन्ध में मनोभौतिकी वैज्ञानिकों ने गहन और विस्तृत अध्ययन किया है तथा इस सम्बन्ध में अनेक कारक तत्वों की चर्चा की है, ऐसे निर्धारक कारकों का अध्ययन करने के क्रम में यह भी स्पष्ट हुआ है कि इस सीमान्तों (Thresholds) के निर्णय में वैयक्तिक विभिन्नता भी पाई जाती है क्यों कि इसका निर्णय व्यक्ति की वैयक्तिक विशेषताओं पर निर्भर करता है। इस दृष्टि से मनोवैज्ञानिकों के लिए मनोभौतिकी से सम्बंधित अध्ययन महत्वपूर्ण है।

4.5 वेबर का नियम

E.H. Weber (1834) लिपज़िग विश्वविद्यालय (Leipzig University) के प्रसिद्ध शरीर शास्त्री थे। 1829 से 1834 के बीच उन्होंने त्वक और मांसपेशीय संवेदनाओं के सन्दर्भ में प्रायोगिक अध्ययन किया जिनके द्वारा वह यह जानना चाहते थे कि व्यक्ति छोटे से छोटे भार में कितनी कुशलता से अंतर कर सकता है। इस तरह के शोधों के आधार पर विभेदन सीमान्त (Differential Limen) या संक्षेप में DL तथा उद्दीपक की तीव्रता (StimulusIntensity) के बीच में एक विशेष प्रकार का सम्बन्ध बताया गया है। DL तथा उद्दीपक की तीव्रता (StimulusIntensity) के संबंधों पर बहुत से प्रयोगों में कई लोगों ने काफ़ी गंभीरतापूर्वक विचार किया, वह था – क्या DL या JND (JustNoteableDifference) किसी संवेदी क्षेत्र (Sense Modality) के लिए एक निश्चित (Fixed) मान होता है? इस पर वेबर द्वारा बताया गया कि DL या JND किसी भी संवेदी क्षेत्र के लिए एक निश्चित मान नहीं होता है। बल्कि रेखीय (Linear) ढंग से मानक उद्दीपक के मान में परिवर्तन होने के साथ-साथ परिवर्तित होते जाता है। दूसरे शब्दों में, जब मानक उद्दीपक का मान बढ़ता है तो उसे तुलनात्मक उद्दीपक (Comparable Stimulus) से भिन्न महसूस करने के लिए उद्दीपक में जो निम्नतम परिवर्तन होता है, (अर्थात DL या JND) वह भी बढ़ता है। अर्थात मानक उद्दीपक का मान (Value) जब बड़ा होगा तो DL भी बड़ा होगा और यदि मानक उद्दीपक का मान जब छोटा होगा तो DL भी कम होगा। वेबर के नियम को एक गणितीय कथन के रूप में देखें तो इसे गणितीय रूप में परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि, "मानक उद्दीपक (StandardStimulus) के मान तथा DL या JND को उत्पन्न करने के लिए निम्नतम मान के बीच एक निश्चित एवं सतत अनुपात (constant ratio) होता है जिसके अनुसार दोनों में परिवर्तन होता है।" उदाहरणस्वरुप, माना जाए कि किसी अँधेरे कमरे में किसी मेज़ पर 10 मोमबत्तियाँ पहले से जल रही हैं और यही उसी कमरे में उसी आकार की एक और मोमबत्ती जला दी जाये तो पहले की रोशनी तथा बाद की रोशनी में व्यक्ति साफ़-साफ़ प्रत्यक्षण (Percieve) कर लेता है, तो अगर 100 मोमबत्तियाँ पहले से किसी अँधेरे कमरे में जल रही हों तो वहां अंतर स्पष्ट करने के लिए 10 मोमबत्तियों को जलाना आवश्यक होगा। ठीक उसी प्रकार जैसे यदि 100 की एक रेखा में बढ़ा दिया जाए तथा 200 में 2 रेखा की वृद्धि कर दी जाए तथा 50 की रेखा में ½ और बढ़ा दिया जाए तभी दो रेखाओं के मध्य अंतर का प्रत्यक्षण नज़र आएगा। वेबर जो इस सूत्र के माध्यम से बताया है –

$$\Delta R/R=K$$

जहाँ, ΔR=DL या JND

R= मानक उद्दीपक (StandardStimulus)

K= सतत (constant) है जिसका ज्ञान $\Delta R/R$ से होता है।

इस सूत्र को निम्न प्रकार से कहा जा सकता है –

DL/StandardStimulus=constant

या इसको शब्दों में व्यक्त करें तो कहा जा सकता है –"किसी भिन्नता का अनुमान केवल भिन्नता की मात्र पर निर्भर नहीं करता बल्कि इस भिन्नता का अनुपात तुलना की जाने वाली वस्तुओं की मात्र में कितना है, इस पर निर्भर करता है।" ("Our Estimation of a Difference depends not on the absolute magnitude of the Difference, but on the ratio of the magnitude of the things compared.")

इस नियम में जो सतत (Constant) होता है उनकी अभिव्यक्ति (Expression) हमेशा भिन्न (Fraction) में होती है जिसे वेबर भिन्न या वेबर अनुपात (Weber's Fraction or Weber's Proportion) कहा जाता है। वेबर अनुपात या भिन्न से यह पता चलता है कि मानक उद्दीपक में किस अनुपात में वृद्धि (या कमी) की जाए कि व्यक्ति (उद्दीपक से) संवेदनशीलता में होने वाले परिवर्तन का सही-सही प्रत्यक्षण कर सके। अर्थात व्यक्ति ने न्यूनतम ज्ञेय भेद (JustNoteableDifference or JND) उत्पन्न हो सके।

उदाहरणस्वरुप, यदि 100 ग्राम के मानक उद्दीपक के साथ 80 ग्राम का दूसरा उद्दीपक देने से व्यक्ति इन दोनों उद्दीपकों से उत्पन्न भार संवेदनशीलता (Weight Sensitivity) में अंतर का प्रत्यक्षण कर लेता है तो वेबर अनुपात 80/100 = .80 हुआ। जिसका अर्थ यह हुआ कि न्यूनतम ज्ञेय भेद उत्पन्न करने के लिए मानक उद्दीपक में .80 गुणा (Times) की वृद्धि करनी आवश्यक है। अर्थात अगर 1000 ग्राम का मानक उद्दीपक है तो JND उत्पन्न करने के लिए 800 ग्राम का होना चाहिए।

इस प्रकार वेबर ने कुछ भौतिक वस्तुओं का मानक जैसे वेबर अनुपात (Weber's Fraction) .20, रेखा की लम्बाई (Line Length) के लिए .30, चमक (Brightness) के लिए .019, बिजली शॉक (Electric Shock) के लिए .014, नमकीन स्वाद (salty taste) के लिए .84, अपने शोधों के माध्यम से पाया है। इस आधार पर सिद्धांत को सार्थक किये।

वेबर नियम की परिसीमा (Limitation)- यह है कि उनकी परिशुद्धता तथा यथार्थता (Accuracy and Precision) उस समय न के बराबर रह जाती है जब मानक उद्दीपक (StandardStimulus) का मान किसी एक छोर (Extreme) पर पहुँच जाता है। मानक उद्दीपक का मान बीच में होता है तब तो वेबर अनुपात की परिशुद्धता

बनी रहती है। परन्तु जब मानक उद्दीपक का मान बहुत ही कम या बहुत ही ज़्यादा हो जाता है तो वेबर अनुपात की परिशुद्धता लगभग समाप्त हो जाती है।

ओनो (Ono) ने 1979 में यह दिखा दिया कि जब उद्दीपक को व्यक्ति के सामने उपस्थित (present) करने के तरीके में परिवर्तन कर दिया जाता है तो इससे वेबर अनुपात भी परिवर्तित हो जाता है। अर्थात जब तरीका ऐसा होता है कि मानक उद्दीपक (StandardStimulus) के बाद तुलनात्मक उद्दीपक (Comparable Stimulus) दिया जाता है तो वेबर अनुपात की परिशुद्धता अधिक होती है। परन्तु यदि मानक उद्दीपक तुलनात्मक उद्दीपक के बाद दिया जाता है तो इससे वेबर अनुपात की परिशुद्धता काफ़ी कम हो जाती है। इन्हीं कारणों से मनोभौतिकीय के विशेषज्ञों ने वेबर नियम से असंतुष्ट होकर अन्य नियमों का प्रतिपादन किया।

4.6 फेकनर का नियम

गुस्ताव फेकनर (Gustav Fechner, 1801-1887) एक दर्शनशास्त्री तथा योग्य विचारक थे। संवेदना के मापन की सर्वाधिक प्रचलित विधि का श्रेय फेकनर (1860) को ही है। परन्तु सच्चाई यह है कि फेकनर ने अपने नियम (Fechnar's Law) का प्रतिपादन वेबर नियम (Webar's Law) में कुछ सुधार लाने के प्रयास से किया था। वेबर नियम प्रयोज्य या व्यक्ति द्वारा किये गए निर्णयों को मापने की एक अप्रत्यक्ष विधि (indirect method) है। जहाँ DL के समान अंतराल मापनी की एक इकाई के रूप में व्यक्त किया जाता है।

फेकनर ने वेबर अनुपात को "मूलभूत सूत्र" माना तथा इसकी उपयोगिता बताते हुए कहा –"'मूलभूत सूत्र' संवेदना के मापन की पूर्वकल्पना नहीं करता, बल्कि यह साधारणतः न्यून सापेक्षिक उत्तेजक वृद्धि तथा सांवेदिक वृद्धि के मध्य पाए जाने वाले सम्बन्ध को प्रदर्शित करता है।" (The fundamental formula does not presuppose the measurement of sensation, nor does it establish, it simply expresses the relation holding between small relative Stimulus increments and sesation increments.)

परन्तु मूलभूत सूत्र से प्रारंभ करके फेकनर ने यह सुझाव दिया कि सूत्र में वृद्धियों के मध्य सम्बन्ध लघुगणकीय (Logarithmic) है। जिस प्रकार संवेदना शून्य से ऊपर कुछ मात्र से प्रारंभ होती है। (सीमान्त), उसी प्रकार लघुगणक भी एक सीमित संख्या से ही प्रारंभ होता है। इस प्रकार संवेदना तथा उद्दीपक के मध्य सम्बन्ध लघुगुणक तथा संख्या के मध्य सम्बन्ध है। इस कथन के साथ कि - संवेदना देहली तथा उद्दीपक मात्र पर निर्भर करती है – संवेदना उत्तेजक की तीव्रता परिणाम के लघुगुणक पर निर्भर करती है। इस प्रकार फेकनर ने वेबर नियम को नए ढंग से समझाया –"जब उद्दीपक एक स्थायी अनुपात के द्वारा बढ़ते हैं, तब उनसे उद्दीप्त संवेदना समान उन्नति या वर्गों द्वारा बढ़ती है।" (When Stimuli increase by a constant ration, the sensation aroused by them increases by equal increments or steps.)

इसका अर्थ है कि उद्दीपक और उसकी संवेदना दोनों एक ही गति से नहीं बढती जब उद्दीपक की उत्तेजना निरंतर अनुपात के द्वारा बढती है, संवेदना की उत्तेजना एक निश्चित क्रम के अनुसार बढती है। इस प्रकार की विचारधारा को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

मान लिया जाए किसी संवेदना का वेबर अनुपात .25 (यानी ¼) है इसका मतलब यह हुआ कि यदि एक उद्दीपक का मान 20 इकाई (Unit) है तो न्यूनतम ज्ञेय भेद (JND) उत्पन्न करने के लिए दूसरा उद्दीपक को 20 का ¼ (या 20 का .25) यानी 5 इकाई उससे अधिक होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, दूसरा उद्दीपक को 20+5 = 25 इकाई का होना चाहिए। इसी प्रकार अगला चरण (Step) पर न्यूनतम ज्ञेय भेद उत्पन्न करने के लिए दूसरा उद्दीपक को .25x25 = 6.25 इकाई मूल उद्दीपक अर्थात 25 इकाई के उद्दीपक से अधिक होना चाहिए। इसका मतलब यह हुआ कि दूसरा उद्दीपक को 25x6.25 = 31.25 इकाई का होना चाहिए। उसी तरह तीसरा चरण पर न्यूनतम ज्ञेय भेद उत्पन्न करने के लिए एक उद्दीपक तो 31.25 इकाई का ही होगा परन्तु दूसरा उद्दीपक को 31.25+7.72 = 38.97 इकाई का होना चाहिए। इसी तरह से प्रत्येक उत्तरोत्तर क़दम पर उद्दीपक के मान 1.25 गुणा अधिक होना चाहिए। अतः प्रत्येक उच्चरोत्तर क़दम पर व्यक्ति की संवेदनशीलता में समान वृद्धि के लिए उद्दीपक के मान में अधिक वृद्धि की ज़रूरत होती है। फेकनर के अनुसार उद्दीपक के मान में वृद्धि होने के फलस्वरूप व्यक्ति की संवेदनशीलता में हुई वृद्धि को लघुगणकीय सम्बन्ध (LogarithmicRelationship) के आधार पर भी व्याख्या की जा सकती है।

ऊपर के उदाहरण में प्रत्येक उत्तरोत्तर क़दम पर DL को एक सतत गुणज द्वारा आसानी से पता लगाया जा सकता है जैसे पहला क़दम पर जहाँ उद्दीपक का मान 20 इकाई है, वहां वह अर्थात DL के लिए दूसरा उद्दीपक $^3/_4$ x 20 = 25 होगा; दूसरा कदम पर वह $^5/_4$ x 20 = 31.25 होगा; तथा इसी प्रकार तीसरा क़दम पर वह $^5/_4$ x 31.25 = 38.97 होगा। ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट है कि उद्दीपक के मान में गुणा (Multiplication) की प्रक्रिया के रूप में वृद्धि होती है। गुणा की प्रक्रिया के रूप में वृद्धि को ज्यामितीय क्रम में वृद्धि (Geometrical Progression) (as 2,4,8,16,32,64 आदि ज्यामितीय क्रम में वृद्धि के उदाहरण हैं) तथा जोड़ की प्रक्रिया के रूप में वृद्धि को अंकगणितीय क्रम में वृद्धि की संज्ञा दी जाती है। जब दो चरों में से किसी एक में ज्यामितीय ढंग से वृद्धि होती है और दूसरे में अंकगणितीय ढंग से वृद्धि होती है तो इस प्रकार के सम्बन्ध को लघुगणकीय सम्बन्ध (LogarithmicRelationship) कहा जाता है। फेकनर के नियम के अनुसार उद्दीपक के मान तथा उससे उत्पन्न होने वाले संवेदन, इसी प्रकार का लघुगणकीय सम्बन्ध होता है इसी नियम के अनुसार यदि उद्दीपक के मान में ज्यामितीय वृद्धि की जाती है तो उससे उत्पन्न संवेदन में भी वृद्धि होती है परन्तु अंकगणितीय क्रम में न कि ज्यामितीय क्रम में। फेकनर ने इसे दिखलाने के लिए सूत्र विकसित किये हैं जिसमें से निम्नांकित सूत्र अधिक लोकप्रिय हो गया।

$$R=K \log S$$

जहाँ R= संवेदन की मात्रा (Magnitude of Sensation)

K= स्थायी अनुपात (वेबर की सतत) (Weber's Constant)

S= उद्दीपक मान की मात्रा (Magnitude of StimulusValue)

फेकनर ने अपने नियम के दो प्रमुख पूर्वकल्पनाओं (Assumptions) का वर्णन किया है, जो निम्न है।

1) चाहे उद्दीपक के किसी भी स्तर (Level) पर क्यों न उत्पन्न हुआ हो, DL या न्यूनतम ज्ञेय भेद (JND) द्वारा संवेदन में हमेशा वृद्धि होती है।
2) संवेदन उन सभी DL या JND का योग होता है जो संवेदन उत्पन्न करने के पहले आते हैं।

यह मान्यताएं फेकनर की मनोभौतिकी विधियों को आधार प्रदान करती हैं।

वेबर अनुपात तथा फेकनर नियम, दोनों का ही प्रयोग अनेक प्रकार के प्रदत्तों की व्याख्या करने के लिए किया जाता है। तथा उनकी वैधता को निर्धारित करने की मनोभौतिकीय विधियाँ न केवल सीमान्तों तथा सांवेदिक मनोविज्ञान के अध्ययन में ही प्रयोग की जाती हैं वरन प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के अन्य क्षेत्रों ने भी इसका प्रयोग किया जाता है। उद्दीपक तथा प्रतिक्रिया के मध्य संबंधों का मापन करने वाली विधियाँ प्रदान करने का श्रेय फेकनर को ही है।

फेकनर के नियम की सीमाएं (Limitations of Fechner Law) -

फेकनर ने उद्दीपक संवेदना (Stimulus-Sensitivity) के सम्बन्ध को लेकर एक नियम के रूप में जो सामान्यीकरण प्रस्तुत किया वह सर्वमान्य नही है बल्कि वह कई कारणों से आलोचना का विषय है।

- वेबर के नियम अनुसार ही फेकनर का नियम किसी उद्दीपक के प्राम्भ और अंत में न रहकर केवल मध्य भाग से सम्बंधित रहता है।
- फेकनर का नियम इस धारणा पर आधारित है कि एक बड़ी संवेदना कईसंवेदनाओं का योग है किन्तु कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार छोटी संवेदना के मिलने पर बड़ी संवेदना नहीं अपितु एक नवीन अनुभव तैयार होता है।
- दो प्रकाश या दो स्वर तीव्रताओं के मध्य न्यूनतम ज्ञेय भेद (JND) एक निरीक्षणकर्ता से दूसरे निरीक्षणकर्ता तक, तथा एक ही निरीक्षणकर्ता के लिएसमय-समय पर परिवर्तनीय होता है (गैरेट)।

अतः फेकनर की JND के सम्बन्ध में विचारधारा उचित नहीं है। इस प्रकार फेकनर के नियम में कई दोष पाए जाते हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि फेकनर का सामान्यीकरण पूर्णरूप से नियमबद्ध नहीं किया जा सकता।

4.7 सारांश

मनोभौतिकी को प्रयोगात्मक मनोविज्ञान की एक प्रमुख शाखा माना गया है। इस शाखा में उद्दीपक तथा उससे उत्पन्न होने वाली अनुभूतियों (Experiences) को परिणात्मक संबंधों (QuantitativeRelationship) का अध्ययन करना है।

- मनोभौतिकी के अंतर्गत मुख्य रूप से अभिज्ञान (Detection) समस्याएं एवं उत्तेजना अंकन (StimulusEstimation) से सम्बंधित समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।
- मनोभौतिकी के बारे में वेबर, फेकनर का नियम काफ़ी प्रचलित है। जिन्होंने न्यूनतम या मात्र असमिय भिन्नता (JustNoteableDifference JND) के सम्बन्ध में स्थिर राशि सम्बंधित नियम का प्रतिपादन किया है यह नियम मूल रूप से वेबर का है।
- अभिज्ञान समस्याओं में मुख्य रूप से देहली या सीमान्तों का निर्धारण किया जाता है ये सीमान्त दो तरह के होते हैं - 1. निरपेक्ष या उत्तेजना सीमान्त (Absolute or StimulusThreshold - RL) 2. भिन्नता सीमान्त (DifferentialThreshold).
- उद्दीपक के मान तथा उससे उत्पन्न होने वाले संवेदन में लघु-गणकीय सम्बन्ध (LogarithmicRelationship) होता है।
- फेकनर के नियम में जब उद्दीपक के मान में ज्यामितीय क्रम में वृद्धि होती है तो उससे उत्पन्न संवेदना में वृद्धि अंकगणितीय क्रम में होती है।
- Absolute Threshold (RL) का तात्पर्य उस न्यूनतम उद्दीपक मान (MinimalStimulusValue) से होता है जो व्यक्ति में अनुक्रिया 50% प्रयास में उत्पन्न करता है।
- DifferentialLimen (DL) का तात्पर्य एक ही संवेदी क्षेत्र से दो उद्दीपकों के बीच का अंतर होता है जो 50% प्रयास में अनुक्रिया उत्पन्न करता है।

4.8 शब्दावली

- **प्रयोग (Experiment):**चुने हुए चर के मध्य प्रकार्यात्मक सम्बन्ध की जांच के लिए नियंत्रित परिस्थिति के अंतर्गत किये गए प्रेक्षणों की एक श्रृंखला होती है।
- **देहली (Threshold):**देहली या सीमान्त उद्दीपक तीव्रता के उस स्तर को कहा जाता है जो शारीरिक या मानसिक क्रिया उत्पन्न करता है।
- **मनोभौतिकी (Psychophysics):**मनोभौतिकी मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसमे उद्दीपक तथा उससे उत्पन्न होने वाली अनुभूतियों के परिणात्मक संबंधों का अध्ययन किया जाता है।

- **निरपेक्ष सीमान्त (Absolute Threshold or RL):**यह न्यूनतम उद्दीपक मान होता है जो व्यक्ति में अनुक्रिया उत्पन्न करने में समर्थ होता है।
- **भिन्नता सीमान्त (DifferentialThreshold):**यह उद्दीपक जो आधे प्रयास में भिन्नता उत्पन्न करता है उसे विभेदन सीमान्त कहा जाता है।
- **उद्दीपक (Stimulus):**वातावरण में स्थित कोई परिभाषित तत्व जो प्राणी को प्रभावित करता हो तथा जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष अनुक्रिया को जन्म देता हो उद्दीपक (Stimulus) कहा जाता है।
- **मानक उद्दीपक (StandardStimulus):**वह मानक स्तर जिस पर अन्य अनुक्रियाओं का स्तर ज्ञात किया जाता है उसे मानक उद्दीपक कहा जाता है।
- **संवेदना (Sensation):**किसी उद्दीपक का मानसिक अनुभव ही संवेदना है।
- **मध्यमान (Mean):**प्राप्तांकों के एक समुदाय का एक अंकगणितीय मध्यबिंदु को मध्यमान कहते हैं।
- **प्रत्यक्षीकरण (Perception):**वे प्रक्रियाएं जो संवेदी सूचना को संगठित करती हैं और उसके परिवेशगत स्रोत के रूप में परिभाषित करती हैं प्रत्यक्षीकरण कहलाती हैं।

4.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. J.N.D. क्या है?
2. DL और RL को बताइये तथा अंतर स्पष्ट कीजिये।
3. निरपेक्ष भिन्नता तथा अंतिम देहलियों में अंतर बताइये ?
4. मनोभौतिकी का संक्षिप्त इतिहास लिखिए।

4.10सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सिंह, अरुण कुमार,(2002): आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, तृतीय संस्करण, मोतीलाल बनारसीदास पटना।
- मिस्र, ब्रज कुमार,(2010): मनोविज्ञान मानव व्यवहार का अध्ययन, पी.एच. आई. learning private limited नई दिल्ली।
- श्रीवास्तव, बीना एण्ड आनंद, वर्षा एण्ड आनन्द बानी (2003): संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास।
- अस्थाना मधु,(1999): मनोभौतिकी यू. एस. पब्लिशर्स वाराणसी।
- एन.सी.ई.आर.टी.,11 (2002).
- सक्सेना, एन.के. एवं भार्गव महेश (1996): मनोभौतिकी एवं मनोमापन, भार्गव बुक हाउस राजामंडी आगरा।

- सिंह, अरुण कुमार (2002): आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान तृतीय संस्करण, मोतीलाल बनारसीदास पटना।
- अस्थाना मधु,(1999) : मनोभौतिकी यू.एस. पब्लिशर्स वाराणसी

4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मनोभौतिकी क्या है? विश्लेषणपूर्वक समझाइये।
2. मनोभौतिकी को परिभाषित करते हुए इसके अर्थ को स्पष्ट कीजिये। प्रयोगात्मक मनोविज्ञान में इसका क्या महत्व है।
3. मनोभौतिकी की मूल समस्याओं का वर्णन कीजिये।
4. मनोभौतिकी में वेबर का क्या योगदान रहा तथा उसकी आलोचना किन कारणों से हुई बताईये।
5. "फेकनर को मनोभौतिकी का पिता कहा जाता है।" इस कथन की पुष्टि करते हुए उनके योगदान का उल्लेख करें तथा उनके द्वारा प्रतिपादित नियम की आलोचनात्मक व्याख्या करें।

इकाई-5 अवसीमा यादेहली का संप्रत्ययएवं सैद्धान्तिक दृष्टिकोण
(Concept and Theoretical View of Threshold)

इकाई संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 देहली या सीमान्त के संप्रत्यय या मनोभौतिकी के कुछ महत्वपूर्ण संप्रत्यय
5.3.1संवेदनशीलता
5.3.2देहली या सीमान्त
5.3.3व्यक्ति (आत्मपरक) समान्तर का बिंदु
5.3.4परिवर्त्य त्रुटि तथा सतत त्रुटि
5.3.5स्थिर अशुद्धि
5.4 विश्लेषण एवं निष्कर्ष
5.5 सारांश
5.6 शब्दावली
5.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.9निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रायोगिक मनोविज्ञान प्राणियों के व्यवहारका अध्ययन करता है प्राणी की अनुक्रिया उद्दीपक के प्रकार्य के रूप में होती है। वातावरण में विद्यमान भौतिक ऊर्जा में ही नहीं प्रति क्षण परिवर्तन होता रहता है वरन प्राणी के आतंरिक परिवेश में भी ऊर्जा परिवर्तित होती रहती है। प्राणी के बाह्य एवं आतंरिक जगत में होने वाले ऊर्जा परिवर्तन को ही उद्दीपक कहते हैं। यहाँ पर स्पष्ट कर देना आवश्यक है की इन्द्रियों द्वारा ग्रहण की जाने वाली परिवर्तित ऊर्जा की मात्रा को भी उद्दीपक कहते हैं। जब हम उद्दीपक के बारे में अनेक प्रश्न करते हैं जैसे क्या किसी अनुक्रिया के प्रकट होने के लिए उद्दीपक का होना आवश्यक है? क्या अनुक्रिया प्रकट होने के लिए उद्दीपक की कोई न्यूनतम मात्रा होनी चाहिए? क्या सभी दशाओं में सभी प्राणियों के लिए उद्दीपक की न्यूनतम मात्रा स्थिर रहती है? उद्दीपक की मात्रा में कम से कम कितना परिवर्तन किया जाए कि प्राणी को भी संवेदना हो? ऐसे प्रश्नों का उत्तर भी मनोभौतिकी के अंतर्गत देखने को मिलता है और इन सब उत्तरों का केन्द्र बिंदु देहली (Threshold) है।

5.2 उद्देश्य

हम लोग हो रहे छोटे-छोटे परिवर्तनों, किसी दो उद्दीपकों के बीच में कब अचानक महत्वपूर्ण परिवर्तन हो जाता है, कभी-कभी चीनी का एक कण पानी के स्वाद को परिवर्तित कर देता है और वह परिवर्तन दुसरे स्वाद का कारण बन जाता है, दरवाज़े के एक तरफ घर और एक तरफ बाहर रहता है तो हम लोग इस बात को कभी आभास नहीं किये। इस प्रकार इन सारी छोटी-छोटी बिंदु का अनुभव करने के लिए देहली (Threshold) के अंतर्गत ही इन सब प्रश्नों का अध्ययन करते हैं।

5.3 देहली या सीमान्त के संप्रत्यय या मनोभौतिकी के कुछ महत्वपूर्ण संप्रत्यय

मनोभौतिकी अध्ययनों में कुछ शब्दावलियों या संप्रत्ययों (determinologies or Concepts) का उपयोग किया जाता है जिनके बारे में विस्तृत रूप से ज्ञान आवश्यक है जैसे कुछ संप्रत्यय निम्नांकित हैं –

1. संवेदनशीलता (Sensitivity)
2. देहली या सीमान्त (Threshold)
3. व्यक्ति (आत्मपरक) समान्तर का बिंदु (Points of SubjectiveEquality or PSE)
4. परिवर्त्य त्रुटि तथा सतत त्रुटि (VariableError and ConstantError)
5. स्थिर अशुद्धि (ConstantError)

5.3.1 संवेदनशीलता (Sensitivity) -

भिन्न-भिन्न तरह के उद्दीपकों के प्रति या विशिष्ट उत्तेजनाओं (Specific Stimuli) के प्रति अनुक्रिया करने हेतु हमारे शरीर में अलग-अलग विशिष्ट ज्ञानेन्द्रिय (SenseOrgans) या ग्राहक (Receptor) हैं जैसे – रोशनी के प्रति आँख, ध्वनि के प्रति कान, स्पर्श के प्रति त्वचा, स्वाद के प्रति जीभ तथा गंध के प्रति नाक अनुक्रियाशील (Responsive) होते हैं परन्तु हमारे इन ज्ञानेन्द्रियों के अनुक्रियाशील होने की क्षमता (Capacity) सीमित होती है जिसके कारण उद्दीपकों (Stimuli) के प्रति एक ख़ास ढंग से तथा चयनात्मक रूप से (Selectively) उनके द्वारा अनुक्रिया की जाती हैजैसे 20 Hz से 20,000 Hz के ध्वनि तरंग (Sound Wave) को ही हम सुन सकते हैं। 20 Hz से कम तथा 20,000 Hz से अधिक की ध्वनि तरंगों के प्रति मानव कान (Human Ear) अनुक्रियाशील नहीं होता है। ज्ञानेन्द्रियों को उत्तेजनाओं के प्रति सीमित रूप से तथा चयनात्मक रूप से अनुक्रिया करने की क्षमता को हम संवेदशीलता की संज्ञा देते हैं। (Senisitivity refers to the Limited and selective Response capacities of the sense orgarns to the stimuli).

संवेदशीलता दो प्रकार की होती है।

(i) निरपेक्ष संवेदनशीलता (AbsoluteSensitivity)

(ii) भिन्नता संवेदनशीलता (DifferentialSensitivity)

(i) निरपेक्ष संवेदनशीलता (AbsoluteSensitivity) -

प्राणी (ORGANISM) द्वारा उत्तेजनाओं के प्रति अनुक्रियाशील होने की सीमित क्षमता (LimitedCapacity to Response) को निरपेक्ष संवेदनशीलता कहते हैं।

(ii) भिन्नता या विभेदक संवेदनशीलता (DifferentialSensitivity) -

विभिन्न उत्तेजनाओं के प्रति गुणात्मक (Qualitative) अथवा परिमाणात्मक ढंग से विभेद या अंतर के प्रति अनुक्रिया करने की क्षमता को विभेदक संवेदनशीलता कहते हैं।

5.3.2 देहली या सीमान्त या अवसीमा (Threshold or Limen) -

देहली अंग्रेज़ी के 'Threshold' तथा लैटिन के 'Limen' का पर्यायवाची है।Threshold का अर्थ होता है 'देहली' या 'चौखट' जो दरवाज़े का एक भाग होता है। चौखट के एक ओर घर का भीतरी भाग तथा दूसरी ओर बाहरी भाग होता है। इस प्रकार देहली वह रेखा बिंदु है जिसके दोनों ओर दो भिन्न-भिन्न संवेदनाएं होती हैं। देहली का अर्थ है जिसे अनुभव किया जा सके। अर्थात उद्दीपक की वह मात्रा जिससे कम पर उसकी उपस्थिति का अनुभव न हो।

यद्यपि अनुक्रिया (Response) प्रकट कराने वाले और न प्रकट कराने वाले उद्दीपकों के बीच सीमा रेखा खींचना मनोवैज्ञानिकों के लिए एक जटिल कार्य है फिर भी मनोवैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न सांवेदिक उद्दीपकों के लिए देहली/सीमान्त स्थापित करने में सफलता प्राप्त की है।

Brown & Cook (1986) ने देहली को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "देहली उद्दीपक तीव्रता के उस स्तर को कहते हैं, जिससे शारीरिक या मानसिक क्रिया उत्पन्न होती है।" (Threshold can be defined as the level of stimulus intensity at which a logical or psychological response is produced.)

Stevens (1954) के अनुसार –"देहली उद्दीपक की वह मात्रा है जिससे कम और अधिक पर भिन्न-भिन्न संवेदनाएं होती हैं।" (The threshold is the Value that divides the continum of stimuli into two classes those to which organism reacts and those to which it does not.)

Underwood (1966) के अनुसार –"न्यूनतम भौतिक उद्दीपक मूल्य जो 50% बार अनुक्रिया को प्रकट कराएं, देहली हैं।" (The minimal physical stimulusValue which will produce a response 50% at the time.)

Guilford (1954) ने देहली की परिभाषा "उद्दीपक की उस न्यूनतम मात्रा के रूप में की है जो 50% बार अनुक्रियाओं को जागृत कर्ता है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि उद्दीपक देहली वह उद्दीपक मात्रा है जो सूचित करने योग्य अनुक्रिया को 50% बार प्रकट करती है।" (It is defined as that low stimulus quantity that arouses a response 50% of the time. We can also say that it is stimulus quantity whose probability of arousing a reportable response is 50%.)

इस प्रकार 'देहली' या अवसीमा (Threshold or Limen) किसी उत्तेजना मूल्य (StimulusValue) की वह सीमा रेखा (Boundary Line) या सुव्यक्त सीमा (Distinct Border) होती है जो उसके बारे में अवगत होने या अवगत नहीं होने की स्थिति को इंगित करती है। इसे एक उदाहरण के द्वारा समझें। मान लें कि कुछ प्रकाश इतना धीमा या दुर्बल है कि कुछ भी दिखाई पड़ना संभव नहीं है, जब कि कुछ प्रकाश इतना तीव्र हो सकती है कि वह बिलकुल स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। इन दोनों प्रकाश में एक ऐसी परिस्थिति या एक ऐसा समय आयेगा जहाँ पर धीमे प्रकाश को धीरे-धीरे बढ़ाने पर दिखाई देने लगे, बस वही प्रकाश की स्थिति देहली कही जायेगी। इसी प्रकार मान लें एक ग्लास में पानी है, पानी में धीरे-धीरे एक-एक कण चीनी डालें और पानी का स्वाद चखें, इसी प्रकार चीनी डालने के बाद स्वाद चखें, एक स्थिति ऐसी आएगी कि चीनी का एक कण डालने पर पानी मीठा लगने लगेगा अतः मिठास की अनुभूति के लिए वह चीनी का कण ही देहली कहा जायेगा। मनोवैज्ञानिकों ने देहली में दो प्रकार के अभिज्ञानों की चर्चा की है।

(i) निरपेक्ष सीमान्त या देहली (AbsoluteThreshold or Limen)

(ii) भिन्नता सीमान्त या देहली (DifferentialThreshold or Limen)

इन दोनों का विस्तृत अध्ययन इकाई-4 में किया जा चुका है।

5.3.3 आत्मपरक समता बिंदु (Point of SubjectiveEquality PSE) -

आत्मपरक समता बिंदु या जिसे संक्षेप में PSE भी कहा जाता है, मनोभौतिकी का एक प्रमुख संप्रत्यय (Concept) है। जब व्यक्ति किसी बाह्य उत्तेजनाओं का प्रत्यक्षीकरण कर्ता है तो वही उत्तेजनाओं के बारे में कुछ आंकलन (Estimation) भी करता है। तो इस आंकलन में थोड़ी बहुत त्रुटियाँ (Errors) भी संभावित हैं या आ जाती हैं जो या तो अत्यांकित जब दो उत्तेजनाओं के बीच की समानताओं का आंकलन (Estimation of Equality or Similarity) करता है जो या तो वास्तविकता से अधिक या कम (अत्यांकित या न्यूनांकित) हो सकता है। व्यक्ति द्वारा मानसिक स्तर पर दो उत्तेजनाओं को जिस मूल्य पर समान होने का अनुभव (Experience of Similarity) करता है, व्यक्ति का वही मूल्य वैयक्तिक समानता का बिंदु (Point of Subjective equaity PSE) होता है। जैसे – मान लें मूलर लॉयर विपर्यय (Muller LyerIllusion) सम्बन्धी प्रयोग में "बाण रेखा" (ArrowHeadedLine) 50mm लंबी है। प्रयोज्य "पंखवाली रेखा" की लम्बाई यदि किसी प्रयास में 45 mm पर बराबर अनुभव करता है तो उस प्रयास विशेष में इस उत्तेजना के लिए वैयक्तिक समानता बिंदु (PSE) 45 mm होगा। इस तरह उसके आंकलन में .5 mm की त्रुटि होती है।जो कि न्यूनांकित त्रुटि (Under Estimated Error) कहलाती है। इसी प्रकार मान लें 100 बार प्रयोज्यों को इन दोनों रेखाओं को समानता का आंकलन करने हेतु अवसर दिया गया और प्रत्येक बार समानता के आंकलन का लेखा तैयार कर औसत मान निकाला गया। इस प्रकार प्रयोज्यों के निरीक्षण के कुल प्रयासों का औसत मान (average Value) ही उसका वैयक्तिक समानता का बिंदु (PSE) होगा

जो वास्तविकता से या तो अधिक या कम हो सकता है। देखें चित्र सं.–1.

A B

चित्र – 1 (मूलर लॉयर विपर्यय)

5.3.4 स्थिर अशुद्धि (ConstantError) -

व्यक्ति जब कभी भी बाह्य उत्तेजनाओं के बारे में अपने अनुभव के आधार पर आंकलन (Estimation) करता है, तो प्रायः यह देखा जाता है कि व्यक्ति का आंकलन अधिप्राक्कलन (Over Estimation) कर्ता है अथवा न्यूनप्राक्कलन (under Estimation) करता है इस तरह की स्थिर अशुद्धि किसी एक ही दिशा में सदैव अर्थात निरीक्षण के प्रत्येक प्रयास में होती है अर्थात इस प्रकार की आंकलन त्रुटि (EstimationError) भिन्न-भिन्न निरीक्षण प्रयासों में अलग-अलग न होकर सतत स्वरुप की होती है। इस प्रकार अशुद्धि की मात्रा को औसत वैयक्तिक समानता बिंदु (average/mean Point of SubjectiveEquality MPSE) के मान की प्रमाण उत्तेजना मान (Standard StimulusValue) से घटाकर प्राप्त किया जाता है यदि PSE_M ज़्यादा है तो अत्यांकन स्थिर अशुद्धि (Over EstimationError) होगी और यही PSE_M प्रमाण से कम है तो न्यूनांकन स्थिर अशुद्धि (Under EstimationError) होगी।

5.3.5 परिवर्त्य अशुद्धि (VariableError) -

जब एक ही उद्दीपक को समान प्रयोगात्मक परिस्थिति में अक्सर उपस्थित किया जाता है तो व्यक्ति द्वारा उन उद्दीपकों की तीव्रता के बारे में दिया गया उत्तर (निर्णय) कई कारणों से समान न होकर परिवर्त्य (Variable) अर्थात भिन्न-भिन्न होते हैं। जब उद्दीपक की तीव्रता एक ही है, प्रयोगात्मक परिस्थिति एक है तथा व्यक्ति भी वही है तो उसके द्वारा किया गया निर्णय भी भिन्न-भिन्न प्रयासों में एक ही होना चाहिए। परन्तु ऐसा नहीं होता है। निर्णय में इस तरह की विभिन्नता को परिवर्त्य त्रुटि (VariableError) की संज्ञा दी जाती है।

इस प्रकार की अशुद्धियों के कई स्रोत होते हैं –

- व्यक्ति की संवेदनशीलता (Sensitivity) एक समय से दूसरे समय समान नहीं होती है।
- प्रयोगात्मक परिस्थिति कितनी भी नियंत्रित क्यों न हो उद्दीपक के भौतिक गुणों में कुछ न कुछ अंतर आ ही जाता है जिसके कारण व्यक्ति का निर्णय एक प्रयास से दूसरे प्रयास में परिवर्तित हो जाता है।
- व्यक्ति की मनोवृत्ति (Attitude) तथा अभिरुचि हर समय एक समान नहीं होती है।

- व्यक्ति की प्रयोग के समय की मनोदशा से भी परिणाम प्रभावित होता है।

5.4विश्लेषण एवं निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययनों से पता चलता है कि मनोभौतिकी के महत्वपूर्ण संप्रत्ययों में संवेदनशीलता जिसमें दो प्रकार की संवेदनशीलता मुख्य है - निरपेक्ष संवेदनशीलता, विभेदन संवेदनशीलता है। इसी प्रकार देहली या सीमान्त (Threshold) मनोभौतिकी के महत्वपूर्ण संप्रत्यय हैं इसी के कारण उद्दीपकों के प्रति शारीरिक या मानसिक अनुक्रिया उत्पन्न करता है। इसी प्रकार हम जानते हैं देहली सीमान्त भी दो तरह के होते हैं।

आत्मपरक समता बिंदु मनोभौतिकी के प्रमुख संप्रत्यय हैं जिसमे पता चलता है कि व्यक्ति जो आकलन करता है और उस प्रेक्षण में कुछ न कुछ गलतियाँ आ ही जाती हैं और व्यक्ति उन गलतियों को समझ नहीं पता है। परिवर्त्य से तात्पर्य यह है कि अगर कोई एक ही व्यक्ति किसी एक परिस्थिति में कई प्रयास (Trial) देता है तो उसमें कुछ न कुछ त्रुटियाँ आ ही जाती हैं। ऊपर वर्णन किये गए तथ्यों से स्पष्ट है कि मनोदैहिक प्रयोग में कुछ त्रुटियाँ भी होती हैं कुछ उपयुक्त विधियाँ अपनाकर इन त्रुटियों को कम करने का प्रयास मनोवैज्ञानिकों के बीच जारी है।

5.5 सारांश

मनोभौतिकी के क्षेत्र में कुछ महत्वपूर्ण संप्रत्यय इस प्रकार हैं - देहली या सीमान्त (Threshold), आत्मपरक समता बिंदु (Point of SubjectiveEquality PSE), परिवर्त्य त्रुटि (VariableError) तथा सतत त्रुटि (ConstantError)। इसमें सीमान्त (Threshold) का संप्रत्यय महत्वपूर्ण है।

- देहली या सीमान्त उद्दीपक तीव्रता के उस स्तर को कहा जाता है जो शारीरिक या मानसिक अनुक्रिया किसी व्यक्ति में उत्पन्न करता है जब उद्दीपक की तीव्रता सीमान्त या देहली से नीचे होता है तो वह किसी भी प्रकार की अनुक्रिया उत्पन्न नहीं करता।
- सीमान्त या देहली दो प्रकार का होता है - उद्दीपक सीमान्त या निरपेक्ष सीमान्त (StimulusThreshold or AbsoluteThreshold RL) एवं भिन्नता सीमान्त (DifferentialThreshold DL) RL से तात्पर्य उस न्यूनतम उद्दीपक मान (Minimal StimulusValue) से होता है जो व्यक्ति में अनुक्रिया 50% प्रयास में उत्पन्न करता है।
- DL से तात्पर्य एक ही संवेदी है जो 50% प्रयास में अनुक्रिया उत्पन्न करता है।

5.6 शब्दावली

- **मूल्य (Value):** व्यक्ति की प्राथमिकताएँ, आशाएं, मानक तथा सामाजिक रूप से अनुमोदित जीवन लक्ष्य को मूल्य कहते हैं।
- **प्रेक्षण (Observation):** किसी वस्तु या घटना की साभिप्राय जांच, ताकि उसके बारे में तथ्य प्राप्त किये जा सके अथवा जो भी देखा गया उसके बारे में व्यक्ति का अपना निष्कर्ष से होता है।
- **देहली (Threshold):** देहली या सीमान्त उद्दीपक तीव्रता के उस स्तर को कहा जाता है जो शारीरिक या मानसिक क्रिया उत्पन्न करता है।
- **चर (Variable):** कोई भी घटक जो मापा जा सके और परिवर्तित किया जा सके।
- **निरपेक्ष देहली (AbsoluteThreshold):** इसका तात्पर्य किसी उद्दीपक की उस न्यूनतम ऊर्जा से है जिसका होना उस उद्दीपक के संज्ञापन के लिए अनिवार्य है।
- **विभेदन देहली (DifferentialThreshold):** किसी उद्दीपक में होने वाला वह न्यूनतम परिवर्तन है जिसका संज्ञान हमें हो सके।
- **अभिवृत्ति (Attitude):** एक व्यक्ति, वस्तु, घटना, स्थान, विचार या दशा के प्रति धनात्मक या ऋणात्मक रूप से प्रतिक्रिया करने की प्रवृत्ति। इसमें संज्ञानात्मक, भावात्मक और व्यवहारात्मक अवयव होते हैं।

5.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. निरपेक्ष देहली से क्या तात्पर्य है?
2. भिन्नता देहली से क्या तात्पर्य है?
3. सतत त्रुटि को स्पष्ट करें।
4. परिवर्त्य त्रुटि का वर्णन करें।
5. देहली से आप क्या समझते हैं? सोदाहरण समझाइए।

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सिंह, अरुण कुमार, (2002)आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, तृतीय संस्करण, मोतीलाल बनारसीदास पटना।
- मिस्र, ब्रज कुमार, (2010) मनोविज्ञान मानव व्यवहार का अध्ययन, पी.एच. आई. learning private Limited नई दिल्ली।
- श्रीवास्तव, बीना एण्ड आनंद, वर्षा एण्ड आनन्द बानी (2003) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास।

- अस्थाना मधु, (1999) मनोभौतिकी यू. एस. पब्लिशर्स वाराणसी।
- एन.सी.ई.आर.टी. 11(2002)
- सक्सेना, एन.के. एवं भार्गव महेश (1996); मनोभौतिकी एवं मनोमापनज, भार्गव बुक हाउस राजामंडी आगरा।
- सिंह अरुण कुमार (2002) आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान तृतीय संस्करण, मोतीलाल बनारसीदास पटना।
- अस्थाना मधु (1999); मनोभौतिकी यू.एस. पब्लिशर्स वाराणसी।

5.9निबन्धात्मक प्रश्न

1. मनोभौतिकी के संप्रत्यय को विस्तारपूर्वक वर्णन करिये।
2. देहली का उपयोग व्यवहारिक जीवन के आधार पर स्पष्ट कीजिये ?
3. मनोभौतिकी के सम्प्रत्यय को विस्तारपूवर्क वर्णन कीजिये।
4. परिवर्त्य त्रुटि और सतत त्रुटि का अर्थ बताते हुए अंतर स्पष्ट कीजिये।
5. संवेदनशीलता के अर्थ को बताते हुए उनके प्रकारों का वर्णन कीजिये।
6. देहली का अर्थ बताते हुए एक उदाहरण स्पष्ट कीजिये।

इकाई-6 अवसीमा का प्राचीन (संकेत संज्ञापन) सिद्धान्त
(Classical (Signal Detection) Theory of Threshold)

इकाई संरचना

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 अर्थ एवं स्वरुप
6.4प्रयोज्यों के द्वारा दिए गए निर्णयों के प्रकार
6.4.1 हिट अनुमान
6.4.2 मिस अनुक्रिया
6.4.3 ग़लत अलार्म की अनुक्रिया
6.4.4 सही अस्वीकार की अनुक्रिया
6.5 विश्लेषण एवं निष्कर्ष
6.6 सारांश
6.7 शब्दावली
6.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.10निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

प्राचीन मनोभौतिकी के प्रयोगों में प्रयोज्य को दो में से एक निर्णय अक्सर लेना पड़ता है - हां या नहीं। यह प्रविधियां इस प्रत्यय को जन्म देती हैं कि देहली एक वास्तविक बिंदु है। दूसरे शब्दों में, यह वह स्थान है जिसमें 50-50% खोज होती है अतः कुछ लेखकों ने इस बिंदु को निरपेक्ष देहली के स्थान पर यानि संज्ञापन देहली (DetectionThreshold) कहना अधिक उचित समझा है इस प्रकार निरपेक्ष देहली वही बिंदु है जहाँ पर 'हां' अनुक्रिया की संख्या 'नहीं' अनुक्रिया के समान है।

6.2 उद्देश्य

संकेत संज्ञापन सिद्धांत का मनोविज्ञान के क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण योगदान है और इस सिद्धांत का उद्देश्य यह मूल्यांकन करना होता है कि कोई प्रतिभागी, जो कुछ देखता है उसको परिशुद्धता तथा सत्यता की किस सीमा तक बता सकता है। और यह भी निश्चित नहीं होता की यदि प्रतिभागी यह बता रहा है कि उसने उद्दीपक को

प्रत्यक्षीकृत किया है तो वास्तव में उसने उद्दीपक का प्रत्यक्षीकरण किया भी है या नहीं।इस सिद्धांत में इस त्रुटि का प्रत्यक्षण करना और उससे परिवर्तन का सही आंकलन करना दर्शाता है।

6.3 अर्थ एवं स्वरुप

क्लासिकल मनोभौतिकी विधियों (Classical Psychophysical Methods) का मुख्य सम्बन्ध 'देहली' (Threshold) के निर्धारण से रहा है लेकिन ये विधियाँ केवल आदर्श स्थिति (IdealSituation) में ही 'देहली' निर्धारण के लिए उपयुक्त मानी जा सकती हैं न कि सामान्य अवस्थाओं मेंअर्थात देहलियों की परिभाषा सांख्यिकी विधियों से की गयी है और यह देखा गया है कि उन विधियों के द्वारा देहली मापन में कई त्रुटियाँ होती हैं जैसे आहात त्रुटि, पूर्वानुमान त्रुटि, स्थान त्रुटि आदि। ये सभी त्रुटियाँ देहली मूल्यों को प्रभावित करती हैं। इसलिए उद्दीपक मूल्य तथा संवेदनशीलता के सम्बन्ध का निर्धारण संभव नहीं हो सका। इसलिए मनोभौतिकी में नया सिद्धांत विकसित हुआ जिसके प्रवर्तक Swets (1954) और उनके सहयोगी Tanner हैं उन्होंने जिस सिद्दांत का प्रतिपादन किया है उसे मनोविज्ञान में संकेत संज्ञापन सिद्धांत (Theory of SignalDetection, Theory of SignalDelectbility– T.S.D., S.T.D.) कहते हैं।

Swets ने यह संकेत किया कि प्रयोज्य (Subject) केवल उद्दीपक का ही प्रत्यक्षीकरण करके अनुक्रिया नहीं करता बल्कि प्रत्येक प्रयोज्य अनुक्रिया के लिए अपना मापदंड (Criteria) भी विकसित करता है और उसे प्रयोग में लाता है। निर्णय लेने के लिए प्रयोज्य केन्द्रीय स्नायविक प्रभाव के किसी एक निश्चित प्रभाव को मापदंड के रूप में चुन लेता है और इसी मापदंड के अनुसार अनुक्रिया (Response) करता है।इस सिद्दांत के अनुसार (STD के अनुसार) 'मनोवैज्ञानिक निर्णय' (Psychological Judgement) के निर्धारण में संवेदी क्षमता या क्रिया (SensoryAbility or Activity) के साथ-साथ असंवेदी पक्षपात की भी मुख्य भूमिका होती है। अतः संज्ञापन सम्बन्धी समस्याओं (Detection Problem) का अध्ययन करने हेतु संकेत संज्ञापन विश्लेषण (SignalDetectionAnalysis) के आधार पर निर्णय को प्रभावित करने वाले संवेदी और असंवेदी (Sensory and Non-Sensory) दोनों प्रकार के कारकों को एक दूसरे से पृथक करके समझने का प्रयास किया जाना चाहिए।

6.4प्रयोज्यों के द्वारा दिए गए निर्णयों के प्रकार

संकेत संज्ञापन विश्लेषण के लिए प्रयोगकर्ता प्रयोज्यों के अनेक प्रयासों के निर्णयों (Judgements) को अंकित करता है इस प्रकार के निर्णय निम्नलिखित चार प्रकार के होते हैं –

6.4.1 हिट अनुमान (HitResponse) –

वैसी अनुक्रिया को कहा जाता है जब उद्दीपक या संकेत उपस्थित है और प्रयोज्य उसकीउपस्थिति की पहचान करने में सफल हो जाता है। दूसरे शब्दों में सिग्नल यानि उत्तेजना उपस्थित है और प्रयोज्य उसकी उपस्थिति की पहचान करने में सफल होता है अर्थात सही हिट (CorrectHit) करता है।

6.4.2 मिस अनुक्रिया (Miss Response) –

वैसी अनुक्रिया को कहा जाता है जब उद्दीपक या संकेत उपस्थित रहता है परन्तु प्रयोज्य उसकी उपस्थिति की पहचान करने में मिस कर देता है। दूसरे शब्दों में सिग्नल यानि उत्तेजना उपस्थित है लेकिन प्रयोज्य उसकी पहचान करने में चूक यानि मिस कर देता है।

6.4.3 ग़लत अलार्म की अनुक्रिया (FalseAlarmResponse) –

वैसी अनुक्रिया को कहा जाता है जबकि किसी प्रयास (Trial) में संकेत अनुपस्थित (Absent) होता है परन्तु प्रयोज्य को यह आभास होता है कि संकेत उपस्थित था। दूसरे शब्दों में जब किसी प्रयास में सिग्नल (उत्तेजना) अनुपस्थित रहता है परन्तु प्रयोज्य उत्तेजना की उपस्थिति बताता है तो यहाँ ‘हिट’ ग़लत होता है इस प्रकार यह ग़लत चेतावनी (अलार्म) (FalseAlarmResponse) है।

6.4.4 सही अस्वीकार की अनुक्रिया (CorrectRejection) –

वैसी अनुक्रिया को कहा जाता है जब किसी प्रयास में संकेत अनुपस्थित होता है और साथ ही साथ प्रयोज्य भी यही कहता है कि संकेत अनुपस्थित था। दूसरे शब्दों में किसी प्रयास में सिग्नल उत्तेजना अनुपस्थित होता है और प्रयोज्य भी उसकी अनुपस्थिति की सही पहचान करता है इस प्रकार वह उत्तेजना की उपस्थिति को सही रूप में अस्वीकार करता है।

उपर्युक्त चारों प्रकार की अनुक्रियाओं को एक तालिका के रूप में इस प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है।

अनुक्रिया (Response)

संकेत (Signal)

	हां (Yes)	नहीं (No)
उपस्थित (Present)	सही (Correct)	ग़लत (Incoreect)
अनुपस्थित (Absent)	ग़लत (Incoreect)	सही (Correct)

सं श.अ.सि. में चार तरह की अनुक्रिया है (Four types of Response in SDT)

उपर्युक्त तालिका में उत्तेजना संकेत की दो प्रकार की अनुक्रियाओं, सही/ग़लत के मिलने से चार प्रकार के संभावित परिणामों को दिखाया गया है। उदाहरण के लिए यदि आप शोरगुल के वातावरण में भी वास्तविक सिग्नल उत्तेजना की पहचान कर लेते हैं तो आपको सही (हाँ) का अंक प्राप्त होगा।सिग्नल के उपस्थित रहने पर

यदि आप नहीं पहचान पाते हैं तो ग़लत (नहीं) का अंक प्राप्त होगा। इसी प्रकार यदि उत्तेजना उपस्थित नहीं हो परन्तु आप उसकी उपस्थिति के रूप में पहचान करेंगे तो ग़लत (सही) का अंक मिलेगा और यदि अनुपस्थित उत्तेजना को अनुपस्थित के रूप में पहचान करते हैं तो चौथी श्रेणी की अनुक्रिया सही (नहीं) का अंक मिलेगा, अर्थात यहाँ 'नहीं' की अनुक्रिया सही मानी जाएगी।

संकेत संज्ञापन प्रयोज्यों द्वारा 'देहली' के आसपास की उत्तेजनाओं (Stimuli That Surround the Subject's Threshold) के अभिज्ञान (Detection) को निर्णय लेने (Decision Taking) की प्रक्रिया के रूप में देखता है, प्रयोज्यों को यह निर्णय करना होता है कि उसने उत्तेजना की पहचान की है अथवा नहीं प्रयोज्य का निर्णय उसकी प्रेरणा, संवेदनशीलता, उत्तेजना के स्वरुप तथा अनेक अन्य पर्यावरणीय कारकों पर निर्भर करता है।

सही अथवा ग़लत अनुक्रियाओं की संभावनाओं (Probabilities of Correct and inCorrectResponse) के आधार पर प्रयोज्य की अनुक्रियाओं का वक्र बनाकर दर्शाया जा सकता है। इसी वक्र को 'रिसीवर ऑपरेटिंग कैरेक्टरिस्टिक वक्र' अर्थात आर.ओ.सी. कर्व (Receiver operating Characteristics Curve– ROC Curve) कहते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो सही अनुमान (Hit) की अनुक्रिया के अनुपात तथा ग़लत अलार्म (FalseAlarm) की अनुक्रिया के अनुपात को आलेख (Graph) पर एक विशेष बल रेखा (Curve) द्वारा दिखलाया है। इस तरह का वक्र जो इन दोनों तरह के अनुपात के संबंधों को दिखलाता है, उसे ही ROC Curve कहते हैं। ROC के विशेष आकार को चित्र के माध्यम से दिखाया गया है।

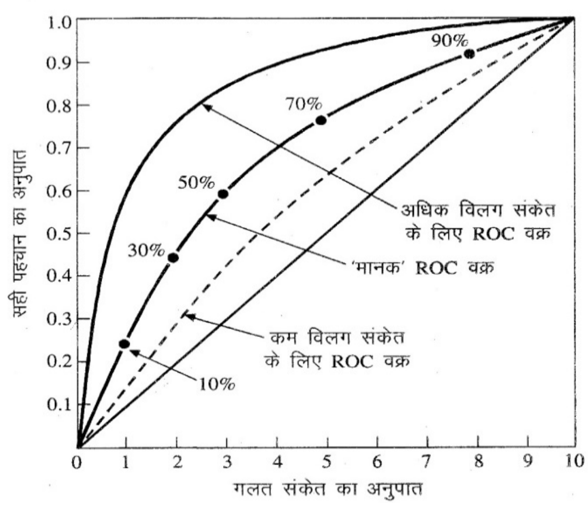

चित्र - २ – आर ओ सी वक्र का एक नमूना (Example of a ROC Curve)

जब संकेत को प्रयोज्य के सामने प्रस्तुत किया जाता है तथा कुछ प्रयासों में प्रस्तुत नहीं किया जाता है तो उससे उत्पन्न होने वाले गुणों का वर्णन (ROC) वक्र के माध्यम से स्पष्ट किया जाता है। इन विशेषताओं या गुणों का वर्णन निम्नांकित है –

- ग्राफ़ (Graph) में दर्शायी गई सीधी तिरछी (Diagonal) रेखा द्वारा संवेदना का संकेत मिलता है। इससे तात्पर्य यह है कि प्रयोज्य उद्दीपक या संकेत को नहीं पहचान पाता है परन्तु सीधी रेखा उस स्थिति में भी प्राप्त हो सकता है जब संकेत 'देहली' (Threshold) के नीचे होता है।
- सीधी तिरछी रेखा से ऊपर अर्थात बायीं ओर की बल रेखा द्वारा संकेत की तीव्रता में वृद्धि और उसके फलस्वरूप उसे पहचान करने की अनुक्रिया के अनुपात में भी वृद्धि का पता चलता है।
- वक्र (Curve) में धनुषाकार जितना ही अधिक होगा, सही अनुमान (Hit) का अनुपात ग़लत अलार्म के अनुपात से अधिक होगा और यह आकार अर्थात बीच की दूरी (अंदर का कुल क्षेत्र) जितनी होगी व्यक्ति की संवेदनशीलता उतनी ही अधिक होगी। इस क्षेत्र को d' (डी प्राईम) कहा जाता है।

6.5 विश्लेषण एवं निष्कर्ष

इस तरह से हम देखते हैं कि संकेत संज्ञापन सिद्धांत (SignalDetectionTheory) में किसी संकेत या उद्दीपक के प्रति व्यक्ति की संवेदनशीलता उसकी प्रत्याशा (Expectation), अभिप्रेरणा आदि से भी प्रभावित होती है। परन्तु संकेत संज्ञापन सिद्धांत में शुद्ध संवेदनशीलता का अध्ययन (d' का माप ज्ञात कर) किया जाता है। और इस विधि का उपयोग सैनिक अपने देश की सीमा में आ रहे जहाज़ का पता लगाने में करते हैं।

इस सिद्धांत का अपना एक विशेष महत्व है परन्तु इसकी आलोचना भी हुई कि इनमें समय काफ़ी लगता है अर्थात इसमें उद्दीपक की पहचान करने के लिए काफ़ी लंबा चौड़ा तरीका अपनाया जाता है जिससे समय की बर्बादी होती है परन्तु यह आलोचना सही नहीं है क्योंकि मानव एक सजीव प्राणी है जिसमें संवेदना, अभिप्रेरणा जैसे असंवेदी कारक मौजूद होते हैं जो मानव निर्णय को एक शुद्ध निर्णय नहीं रहने देते हैं। इस सिद्धांत के विस्तृत विश्लेषण द्वारा व्यक्ति के निर्णय को असंवेदी कारकों से दूर रखकर अध्ययन करना संभव होता है।

6.6 सारांश

संकेत संज्ञापन सिद्धांत मनोदैहिकी क्षेत्र में एक प्रमुख सिद्धांत है इस सिद्धांत से हमें यह पता चलता है कि किसी संकेत की पहचान से सम्बंधित निर्णय कहाँ तक संवेदी कारकों से तथा कहाँ तक असंवेदी कारकों से प्रभावित होता है।

- संकेत संज्ञापन सिद्धांत संवेदी कारकों और असंवेदी कारकों को अलग-अलग करने की एक महत्वपूर्ण विधि या सिद्धांत है।
- सही अनुमान (HitResponse) से तात्पर्य व्यक्ति या प्रयोज्य का सही निर्णय देने से है।
- गलत अनुमान (Miss Response) से तात्पर्य प्रयोज्य के गलत या चूक कर देने की स्थिति है।

- गलत चेतावनी की अनुक्रिया (FalseAlarmResponse) से तात्पर्य यह है कि संकेत अनुपस्थित रहता है परन्तु प्रयोज्य इस चीज़ को समझ नहीं पाता और गलत अनुक्रिया देता है।
- सही स्वीकार की अनुक्रिया (CorrectResponse) का तात्पर्य यह है कि जब संकेत अनुपशितत हो और प्रयोज्य को भी अनुपस्थिति का आभास हो जाए तो ऐसी स्थिति को सही स्वीकार की अनुक्रिया कहते हैं।

6.7 शब्दावली

- **अनुक्रिया (Response):**व्यक्ति द्वारा दी गयी सही या गलत निर्णय को ही अनुक्रिया कहते हैं।
- **मूल्यांकन (Judgment):** उपलब्ध सामग्री के आधार पर मत स्थिर करने, निर्णय पर पहुँचने और मूल्यांकन करने की प्रक्रिया, निर्णय की प्रक्रिया का उत्पाद।
- **आर.ओ.सी. वक्र (ROC Curve):**व्यक्ति द्वारा दी गयी सही अनुमान (HitResponse) की अनुक्रिया के अनुपात का आलेख (Graph) पर एक विशेष वक्र रेखा (Curve) द्वारा इन दोनों तरह के अनुपात के संबंधों को दिखाया जाता है उसे (Receiver operating characteristic ROC) वक्र कहा जाता है।
- **डी. मूल्य (D value):**डी. मूल्य से तात्पर्य यह होता है कि धनुषाकार आकृति के अंदर के कुल क्षेत्र को डी. मूल्य कहते हैं।

6.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. संकेत संज्ञापन सिद्धांत का अर्थ बताइये।
2. सकेंत संज्ञापन सिद्धांत में चारों अनुक्रियाओं का वर्णन कीजिये।
3. संकेत संज्ञापन सिद्धांत में (R.O.C.) वक्र का एक चित्र बनाईये।
4. संकेत संज्ञापन सिद्धांत के आधार पर एक उदाहरण दीजिए।

6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सिंह, अरुण कुमार, (2002) आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, तृतीय संस्करण, मोतीलाल बनारसीदास पटना।
- मिस्र, ब्रज कुमार, (2010) मनोविज्ञान मानव व्यवहार का अध्ययन, पी.एच. आई. learning private limited नई दिल्ली।
- श्रीवास्तव, बीना एण्ड आनंद, वर्षा एण्ड आनन्द बानी (2003) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास।
- अस्थाना मधु, (1999) मनोभौतिकी यू. एस. पब्लिशर्स वाराणसी।
- एन.सी.ई.आर.टी. 11(2002) ।

- सक्सेना, एन.के. एवं भार्गव महेश, (1996) मनोभौतिकी एवं मनोमापनज, भार्गव बुक हाउस राजामंडी आगरा।
- सिंह अरुण कुमार, (2002) आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान तृतीय संस्करण, मोतीलाल बनारसीदास पटना।
- अस्थाना मधु, (1999) मनोभौतिकी यू.एस. पब्लिशर्स वाराणसी।

6.10निबन्धात्मक प्रश्न

1. संकेत संज्ञापन सिद्धांत के चारों अनुक्रियाओं का वर्णन कीजिये।
2. संकेत संज्ञापन सिद्दांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।
3. संकेत संज्ञापन सिद्धांत का वर्णन कीजिये।
4. संकेत संज्ञापन सिद्धांत में आर.ओ.सी. वक्र क्या होता है? समझाइये।
5. संकेत संज्ञापन सिद्धांत का उदाहरण देते हुए चित्रों के माध्यम से स्पष्ट कीजिये।

इकाई–7 मनोभौतिकी विधियाँ: प्राचीन विधि, आधुनिक विधि(Psychophysical Methods:- Classical and Modern)

इकाई संरचना

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 क्लासिकलमनोभौतिकी विधियाँ

7.3.1 औसत अशुद्धि या अभियोजन विधि

7.3.2 सीमा विधि या न्यूनतम परिवर्तन विधि

7.3.3 स्थिर उत्तेजना एवं स्थिर उत्तेजना अंतरविधि

7.4 मनोभौतिकी की विधियाँ: आधुनिक विधि

7.4.1 फुलर्टन-कैटिल सिद्धांत

7.4.2 थर्सटन का तुलनात्मक निर्णय का नियम

7.4.3 हैल्सन का अनुकूलन स्तर

7.5 विश्लेषण एवं निष्कर्ष

7.6 सारांश

7.7 शब्दाली

7.8 स्वमूल्यांकनहेतु प्रश्न

7.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

मनोभौतिकी का शोध क्षेत्र काफ़ी व्यापक है। शोधक्षेत्र में निरंतर ही विकास होता रहा है जैसा कि फेकनर ने कहा है "गगनचुम्बी इमारत की ऊंचाई कभी समाप्त नहीं होती क्योंकि मजदूर उसे बनाने का तरीका कभी नहीं जान सके।" इस प्रकार यद्यपि मन तथा उसके आयामों (Dimension) को समझने में मनोभौतिकी का योगदान इतना अधिक नहीं है जितना की फेकनर तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों ने माना परन्तु फिर भी सांवेदिक तंत्रों (Sensory System) के सम्बन्ध में मनोभौतिकी ने बहुत उपयोगी तथ्य प्रस्तुत किये हैं। पिछले सौ वर्षों से सांवेदिक देहली का मापन करने के लिए मनोभौतिकी का प्रयोग किया जाता रहा है परन्तु यहः कहना गलत होगा कि मनोभौतिकी

केवल व्यावहारिक या सांवेदिक मनोविज्ञान तक ही सीमित है। 20वीं शताब्दी के अनुसंधानों से यह ज्ञात हो चूका है कि देहली के मापन तथा सार्वभौमिक मनोभौतिकी नियमों की खोज अब भी अपूर्ण है।

7.2 उद्देश्य

मनोभौतिकी मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसके अंतर्गत मानसिक और भौतिक जगत के संबंधों का मात्रात्मक अध्ययन किया जाता है मनोविज्ञान का संबंध उद्दीपकों तथा अनुक्रियाओं के मध्य पाए जाने वाले संबंधों का अध्ययन करने से है। बाह्य परिवेश से प्राणी (Organism) द्वारा ग्रहण की जाने वाली घटना को उद्दीपक कहते हैं तथा प्राणी के अंदर होने वाले परिवर्तनों को अनुक्रिया कहते है जो कि मापन योग्य होती है। चूंकि मनोभौतिकी मनोविज्ञान की ही एक शाखा है अतः इसका सम्बन्ध भी उद्दीपकों तथा उसके प्रति प्राणी की अनुक्रिया से है इस प्रकार मनोभौतिकी में अनेक सिद्धान्तों नियमों का अध्ययन करने के बाद इसके विधियों का अध्ययन समस्याओं का अध्ययन करना भी वांछनीय है।

7.3 क्लासिकलमनोभौतिकी विधियाँ

मनोभौतिकी में अगर प्राचीन विधियों (Classical Method)की बात की जाए तो G.T. Fechner के द्वारा दी गई तीन विधियाँ हैं जो कि मनोभौतिकी की समस्याओं का अध्ययन करने के लिए महत्वपूर्ण है –

(i) औसत अशुद्धि या अभियोजन विधि (AverageError or Adjustment)

(ii) सीमा विधि या न्यूनतम परिवर्तन विधि या उत्तरोत्तर खोज की विधि (Method of Limit or the Method of Minimal Changes or the Method of SuccessiveExploration.)

(iii) स्थिर उत्तेजना एवं स्थिर उत्तेजना अंतरविधि (Method of ConstantStimuli and the Method of ConstantStimulusDifference)

7.3.1 औसत अशुद्धि या अभियोजन विधि (AverageError or Adjustment Method) –

इस विधि को कई अन्य नामों से जाना जाता है जैसे – समायोजन या अभियोजन विधि (Method of Adjustment), पुनरुत्पादन विधि (Method of AverageError) तथा तुल्य उद्दीपक विधि (Method of EquivalentStimuli) से जाना जाता है। जैसा कि इस विधि के नाम से स्पष्ट है, इस विधि का उपयोग किसी उत्तेजना के परिणाम मूल्य (Magnitude or Value) के प्रत्यक्षीकरण (Perception) यानि अनुभव (Experience) में होने वाली त्रुटियों का औसत ज्ञात किया जाता है। इस विधि को उपयोग में लाने हेतु अध्ययनकर्ता कसी स्थिर मूल्य की 'प्रमाण उत्तेजना' (StandardStimulus of a FixedValue) के साथ एक तुलनीय उत्तेजना (ComparisonStimulus) यानि जिसके मूल्यों को घटाकर या बढ़ाकर प्रमाण के बराबर किया जा

सकता है (इसलिए इसे परिवर्त्य उत्तेजना VariableStimulus कहते हैं) को प्रस्तुत किया जाता है तथा प्रयोज्य (Subject) को इस 'परिवर्त्य' उत्तेजना के मूल्यों को आवश्यकतानुसार कभी घटाकर तो कभी बढ़ाकर 'प्रमाण उत्तेजना' (StandardStimulus) के बराबर मूल्यों पर अभियोजित या समायोजित करने को कहा जाता है। इसलिए इसे समायोजन की विधि (Method of Adjustment) भी कहते हैं। इसी तरह के कई 'समायोजन प्रयास' लिए जाते हैं प्रत्येक प्रयास में प्रयोज्यों द्वारा परवर्ती उत्तेजना और प्रमाण उत्तेजना के मूल्यों को बराबर करने के क्रम में (प्रमाण उत्तेजना) के वास्तविक परिमाण या मूल्य और प्रयोज्य द्वारा परिवर्त्य उत्तेजना मूल्य को परिवर्तित कर जिस मूल्य पर बराबर किया गया है उन दोनों मूल्यों के अंतर से मूल्यों के प्रत्यक्षीकरण में होने वाली त्रुटि का आकलन किया जाता है। इन मानों के निर्धारण द्वारा व्यक्ति के निर्णय करने की परिशुद्धता संवेदनशीलता की तीक्ष्णता आदि का विश्लेषण किया जाता है।

7.3.2 सीमा विधि या न्यूनतम परिवर्तन विधि (Method of Limit or the Method of Minimal Changes or the Method of SuccessiveExploration) –

इसको उत्तरोत्तर (क्रमिक) खोज विधि (Method of Successive or Serial Exploration) भी कहा जाता है, इस विधि का उपयोग मुख्य रूप से (RL) अथवा उत्तेजना सीमान्त (StimulusThreshold) एक भिन्नता सीमान्त (DifferentialThreshold) का पता लगाने या निर्धारित करने हेतु किया जाता है। यही RL का तात्पर्य उत्तेजना के उस मूल्य या परिमाण से है जिसका अभिज्ञान कठिनाई से होता है। अतः RL अभिज्ञान की न्यूनतम मात्रा होती होती है। इसे मात्र अभिज्ञान कहते हैं। (मात्र अभिज्ञान (Just Noteable) से तात्पर्य किसी उत्तेजना के उस मूल्य से है जिसका अभिज्ञान कुल व्यवहारों के आधे प्रयासों में होता है और शेष आधे प्रयासों में नहीं होता है)। और मात्र अभिज्ञान की प्रक्रिया को उत्तेजना या निरपेक्ष समांत (Stimulus or AbsoluteThreshold) कहते हैं। इसी प्रकार भिन्नता सीमान्त (Differential Threshold) से तात्पर्य किसी उत्तेजना के मूल्यों के न्यूनतम या लघुतम उस अंतर मूल्य को कहते हैं जिसका आभास 50% अवसरों पर होता है तथा शेष 50% अवसरों पर नहीं होता है। इस प्रकार उत्तेजना मूल्य में न्यूनतम परिवर्तन की सीमा जिसके कारण मूल्यों में भिन्नता का अनुभव होता है, को ही 'मात्र भिन्नता सीमान्त' कहते है।

इन मूल्यों के निर्धारण के लिए इस विधि में परिवर्त्य उत्तेजना (VariableStimulus) को क्रमिक क्रम में न्यूनतम मूल्य का वैकल्पिक रीति से उत्तरोत्तर (Successively) बढ़ते हुए या घटते हुए क्रम में परिवर्तित करते हुए प्रस्तुत किया जाता है और इस प्रकार प्रयोज्य प्रत्येक वैकल्पिक प्रयास में जिस न्यूनतम मूल्य पर अपनी भिन्नता सम्बन्धी अनुक्रिया व्यक्त करता है उनका विश्लेषण कर वांछित अभिज्ञान सीमान्तों का पता लगाया जाता है। इसलिए इसे 'उत्तरोत्तर' की विधि भी कहते हैं। चूंकि इस विधि में प्रत्येक वैकल्पिक प्रयासों (बढ़ने या

घटने पर) परिवर्त्य उत्तेजना के मूल्य में न्यूनतम बिंदु का परिवर्तन लाकर प्रयोज्य की अनुक्रिया ली जाती है, इसलिए इसे 'न्यूनतम परिवर्तन की विधि' (Method of Minimal Changes) भी कहते हैं।

7.3.3 स्थिर उत्तेजना एवं स्थिर उत्तेजना अंतरविधि (Method of ConstantStimuli and ConstantStimuliDifference) –

इस विधि को बारंबारता विधि के नाम से भी जाना जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य निरपेक्ष सीमान्त (Obsolute Threshold) अथवा भिन्नता सीमान्त (DifferentialThreshold) का पता लगाना होता है। यह विधि सीमा विधि (Method of Limit) से मिलती-जुलती विधि है। इस विधि में एक स्थिर मूल्य के प्रभाव उत्तेजना (StandardStimulus of a FixedValue) और विभिन्न मूल्यों वाली परिवर्ती उत्तेजना को बारी-बारी से एक दूसरे के बाद प्रस्तुत किया जाता है और प्रयोज्य को इन दोनों के बीच तुर्लना करते हुए यह बताना होता है कि उसे किस मूल्य वाली परिवर्त्य उत्तेजना प्रमाण उत्तेजना के बराबर भारी या हलकी अथवा छोटी अनुभव होती है। जब इस विधि का प्रयोग RL का पता लगाने हेतु किया जाता है तो इसे स्थिर उत्तेजना विधि कहते हैं और जब इस विधि का उपयोग भिन्नता सीमान्त (DL) का पता लगाने हेतु किया जाता है तो इसे 'स्थिर उत्तेजना अंतर विधि' (ConstantStimuliDifferenceMethod) कहते हैं। इस विधि को बारंबारता विधि (Frequency Method) के नाम से भी जाना जाता है। इसका कारण यह है कि स्थिर मूल्य वाली उत्तेजना को विभिन्न मूल्यों वाली परिवर्त्य या तुलनीय उत्तेजनाओं के साथ तुलनात्मक निर्णय कई बार लिए जाते हैं और इस प्रकार प्रयोज्यों के निर्णयों की बारंबारताओं (Frequencies of Judgements) का विश्लेषण कर सीमान्तों का निर्धारण किया जाता है।

सीमा विधि और स्थिर उत्तेजना विधि में एक और समानता यह है कि इन दोनों विधियों में परिवर्त्य उत्तेजना विधि के मूल्यों में होकर या जोड़-तोड़ प्रयोगकर्ता द्वारा ही किया जाता है प्रयोज्य को केवल अनुक्रिया देनी होती होती है। इस प्रकार ये दोनों विधियाँ औसत अशुद्धि विधि से भिन्न है क्योंकि औसत अशुद्धि विधि से प्रयोज्य एवं परिवर्त्य उत्तेजना में हेरफेर या जोड़-तोड़ लाकर उसे प्रमाण उत्तेजना के बराबर अभियोजित करना है।

7.4 मनोभौतिकी कीविधियाँ: आधुनिक विधि

आधुनिक विधि (Modern Method)- फेकनर की पारस्परिक मनोभौतिकी प्राविधियों तथा मापनों के विभिन्न प्रकार के संशोधन में चार सीमा चिह्न (Landmark) देखने को मिलते हैं जिनके फलस्वरूप मनोभौतिकीय विधियों का अन्यतम विकास हुआ है। ये हैं – (i) फुलर्टन-कैटिल सिद्धांत (ii) थर्सटन का तुलनात्मक निर्णय का नियम (iii) हैलसन का अनुकूलन स्तर तथा, (iv) स्टीवेंस का घातांक फलन।

7.4.1 फुलर्टन-कैटिल सिद्धांत (Fullerton-Cattell Principle, 1892) -

इस नियम के अनुसार “प्रायः समान रूप से ज्ञेय भेद एक से होते हैं जब तक कि उनको सदैव या कभी नहीं जाना जा सके।” (Equally often noticed Differences are equal, unless always or never noticed.) इस नियम की यह मान्यता है कि यदि उद्दीपक इस प्रकार के होंगे – जिनमें या तो कभी भी भिन्नता दृष्टिगोचर नहीं होगी या सदैव ही भिन्नता दृष्टिगोचर होगी तो विचलन असमान होंगे, इस तथ्य के प्रमाण भी मिलते हैं। संक्षेप में, इस नियम का प्रयोग उसी समय किया जा सकता है जबकि उद्दीपकों के मध्य संबंधों को निरन्तर एक ही प्रकार से न समझा जा सके। फेकनर ने अपने नियम को वेबर के अनुपात (Weber’s Ratio) से सम्बंधित माना, परन्तु थर्सटन (1927) तथा गिलफर्ड (1954) दोनों के ही अनुसार यह केवल तभी सत्य है जब उद्दीपक-सांतत्य (Stimulus continuum) में विचलन समान हो।

मनोभौतिकी में विचलन के अनुसंधानों में फुलर्टन तथा कैटिल ने प्रयोज्यों से एक उद्दीपक को अनेक बार पुनःनिर्मित करने को कहा, तत्पश्चात उन्होंने पुनरुत्पादन की संभाव्य त्रुटि (Probable Error) ज्ञात की। अब यदि ‘वेबर-अनुपात’ तथा ‘फुलर्टन-कैटिल नियम’ दोनों ही सत्य हैं तो विचलन स्थिर होना चाहिए, अर्थात संभाव्य-त्रुटि का मध्यमान (mean) से अनुपात स्थिर (Constant) होना चाहिए। परन्तु उन्होंने यह पाया कि पुनरुत्पादनों की औसत त्रुटि उद्दीपक के वर्गमूल के प्रत्यक्ष अनुपात में बढती है। इस प्रकार फुलर्टन-कैटिल नियम को निम्न सूत्र के माध्यम से जाना जा सकता है –

$$\Delta S = C\sqrt{S}$$

जहाँ पर C= Constant, सम्भाव्य या औसत त्रुटि

परन्तु गिलफर्ड (1932) ने पाया कि अनुभवात्मक प्रदत्त वेबर अनुपात तथा ‘फुलर्टन-कैटिल नियम’ के बीच में है। उन्होंने नया प्रस्ताव दिया जिसे n^{th} घातांक नियम (Power Law) कहते हैं। गिलफर्ड ने कहा कि चूंकि फुलर्टन-कैटिल नियम को इस प्रकार लिखा जा सकता है $\Delta S = CS^{.5}$ तथा वेबर के अनुपात में घात 1.0 है, अतः दो फलनों के बीच उचित प्रदत्त के मूल्यांकन के लिए यह माना जाता है कि घातांक में परिवर्तन प्रदत्त पर निर्भर कर्ता है। इसी प्रकार गिलफर्ड-प्रकार्य को इस प्रकार लिखा जा सकता है $\Delta S = KS^{n}$, जहाँ पर n को प्रदत्त से प्राप्त किया गया है और आवश्यक रूप से नहीं, पर शायद 0.5 (फुलर्टन-कैटिल) तथा 1.0 (वेबर) के बीच है तथा K=Constant है।

7.4.2 थर्सटन का तुलनात्मक निर्णय का नियम (Thurston’s Law of Comparative Judgment) -

मनोभौतिकी के किसी भी प्रयोग में प्रयोज्य के सम्मुख दो उद्दीपकों को प्रस्तुत किया जाता है तथा उससे यह पूछा जाता है कि दोनों में वह किसी गुण के आधार पर भेद कर सकता है। यदि वह किसी विशेष गुण के आधार पर उन दोनों उद्दीपकों में विभेद करता है तो दो प्रत्युत्तरों की संभावना है – या तो ‘अ’ उत्तेजना ‘ब’ से किसी गुण में

अधिक होगी या 'ब''अ' से। यदि प्रयोज्य उनकी कभी भी भिन्नता नहीं जान पाता तब भी प्रभाव एक ही होगा, क्योंकि दोनों ही परिस्थितियों में वह अपने निर्णय को नहीं बदलता है। इसी कारण फुलर्टन-कैटिल नियम को यह कहकर संशोधित कर दिया गया है कि जब तक अंतर सदैव एवं कभी दृष्टिगत होते हैं, प्रत्युत्तरों में परिवर्तनशीलता नहीं पाई जाती है। जब दो उद्दीपक आपस में बहुत समान होते हैं तो प्रयोज्य के प्रत्युत्तरों में भिन्नताएं पाई जाती हैं।

विचलन की प्रमुख समस्या दो उद्दीपकों में विभिन्नता की मात्रा का मूल्यांकन करना है। यह मूल्यांकन इस आधार पर किया जा सकता है कि उद्दीपक 'अ' उद्दीपक 'ब' से कितनी बार 'बड़ा' बताया गया है तथा कितनी बार 'ब' तथा 'अ' उद्दीपक अन्य उद्दीपकों से 'भिन्न' बताये गए हैं। यही तथ्य वेबर अनुपात तथा फुलर्टन-कैटिल नियम में पाया जाता है, क्योंकि यह प्रत्येक निर्णय के केन्द्रीय झुकाव के मापन से सम्बंधित विचलन का अप्रत्यक्ष मूल्यांकन है। तुलनात्मक निर्णय का नियम इसी समस्या से सम्बंधित हैं। नियम यह है –

$$X_1 - X_2 = Zab \sqrt{\sigma^2 a + \sigma^{\sigma 2} b - 2rab\sigma a\sigma b}$$

जहाँ पर Zab=सामान्य विचलन

σa तथा σb= X_1 तथा X_2 के विचलन (dispersion) से सम्बंधित मानक विचलन(σ)

rab=दोनों उद्दीपकों के मध्य सहसंबंध का मान

X_1 तथाX_2 उद्दीपकों का मापित मूल्य (Scaled Values)

थर्सटन का नियम परंपरागत मनोभौतिकी की समस्याओं को समझने तथा मापित प्रविधियों (Scaling Techiniques) में उपयोगी होने के कारण अति महत्वपूर्ण है।

7.4.3 हैल्सन का अनुकूलन स्तर (Helson's Adaptation Level) -

अनुकूलन स्तर सिद्धांत का प्रतिपादन हैल्सन (1964) ने किया था। मनोभौतिकीय अनुसंधानों से प्राप्त विरोधात्मक घटनाओं (Phenomena) के अध्ययन के लिए इस सिद्धांत की स्थापना की गयी थी। बाद में इस सिद्धांत का प्रयोग अन्य जटिल सांवेदनिक तथा व्यावहारिक प्रक्रियाओं के लिए किया गया। अनुकूलन स्तर पर अनुसंधानों तथा सिद्दांतों के परिणामस्वरूप फेकनर के नियम का पुनःव्यवस्थापन किया गया तथा अब इसका प्रयोग सीखने तथा अनुबंधन (Conditioning) की प्रक्रियाओं के लिए भी किया जाने लगा है।

हैल्सन (1938) ने रंग के चार गुणों – स्थिरता (Constancy), विरोध (Contrast), रूपांतर (Conversion), अनुकूलन (Adaptation) के सापेक्षिक प्रभाव को परखने के लिए एक प्रयोग किया। उन्होंने इसके लिए तीन परिस्थितियों (i) वस्तु का रंग (Colour of the Object) (ii) पृष्ठभूमि (Background), (iii) प्रकाश की मात्रा (Amount of Illumination Present) का सहारा लिया। इस प्रयोगात्मक दृष्टिकोण में इन तथ्यों तथा प्रयोज्यों द्वारा उनके विषय में लिए गए निर्णय के मध्य अन्तर्सम्बन्ध स्पष्ट हो गया। वस्तु के रंग का

निर्णय प्रयोग में लिए गए अन्य चरों (Variables) पर निर्भर था। इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि निर्णय अन्य उद्दीपकों से अनुकूलन के स्तर पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ, प्रयोज्य का वस्तु के रंग सम्बन्धी निर्णय इस पर आधारित था कि उसने चमक (Illumination) के साथ किस स्तर तक अनुकूलन कर लिया था।

हैल्सन ने अनुकूलन स्तर की परिभाषा इस प्रकार दी है –"अनुकूलन स्तर प्राणी को दोनों ओर बाहर तथा भीतर से प्रभावित करने वाले उद्दीपकों का समग्र प्रभाव है तथा इसमें पूर्व अनुभवों के अवशेष भी निहित हैं।"(Adaptation level is a pooled effect of all stimuli impinging upon the organism both from without and within and includes residuals from past experience.) इसके बाद यह भी माना गया कि अनुकूलन स्तर इन सभी उद्दीपकों का मानक औसत (Weighted Mean) है। इस प्रकार पहले से प्राप्त निर्णयों को इस प्रकार भारित (Weighted) किया गया कि ये घटनात्मक निर्णयों (Eventual Judgments) का पूर्वकथन कर सकें।

हैल्सन तथा अन्य विद्वानों द्वारा किये गए अध्ययनों के परिणामस्वरूप मनोभौतिकीय मापन के प्रति दृष्टिकोण में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए।**मिचेल तथा हैल्सन** (1949) ने फेकनर के नियम का पुनर्व्यवस्थापन किया है। इसके अनुसार किसी प्रयास में प्रयोज्य की अनुक्रिया तत्कालीन या अन्य पहले के प्रयासों पर निर्भर करती है।

अनुकूलन स्तर के प्रत्यय को व्यवहार के अनेक क्षेत्रो-अमूर्त चिंतन, संवेग आदि में सामान्यीकृत किया जा सकता है, अतः इसके प्रयोग का क्षेत्र विस्तृत हो गया है परन्तु इसका मुख्य उद्देश्य मनोभौतिकीय निर्णयों के अध्ययनों में पाए जाने वाले कुछ विरोधों को सुलझाना था। अन्य जटिल व्यवहारों को जानने के लिए मनोभौतिकी की समस्याएं अधिक उपयोगी विधियाँ प्रदान करती हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि मनोभौतिकी वह स्थान है जहाँ से व्यवहार के ज्ञान का उदगम होता है।

7.4.4 स्टीवेंस का शक्ति कार्य (Steven's Power Function) -

फेकनर की मूलभूत मान्यता यह थी कि सामान उद्दीपक अनुपात सामान सांवेदनिक भिन्नताओं के समरूप होते हैं। अनेकों प्रयोगों के अधर पर स्टीवेंस ने बताया कि मनोवैज्ञानिक संवेदना से सम्बंधित भौतिक उद्दीपक होते हैं –

$$\psi = K(\gamma - \gamma o)n$$

जहाँ पर K= एक स्थिरांक (Constant) जो कि इकाइयों के चयन से निर्धारित किये जाते हैं।

n=An exponent, जो कि सांवेदिक तंत्र के साथ-साथ परिवर्तित होते हैं।

ψ=उद्दीपक का मनोवैज्ञानिक परिमाण

γ=शारीरिक उद्दीपक

γo=प्रभावकारी देहली (Effective Threshold) – भौतिक मान का वह बिंदु जहाँ से प्रभावकारी उद्दीपक का मापन प्रारंभ होता है।

स्टीवेंस के सूत्र में वेबर अनुपात तथा फेकनर नियम दोनों की विशेषताएँ निहित हैं। फेकनर नियम के समान यह इसलिए है क्योंकि इसमें उस देहली मूल्य (ThresholdValue) का मापन निहित है जिस पर मनोवैज्ञानिक निर्णय दिया गया है। Exponent 'n' के प्रयोग के कारण इनके सूत्र में 'वेबर अनुपात' का मुख्य तत्व निहित है, जो कि अध्ययन की जाने वाली ज्ञानेन्द्रिय के साथ-साथ बदलती है। प्रयोग के आधार पर स्टीवेंस तथा उसके सहयोगियों ने पाया के 'n' सांवेदिक (Sensory Modality) के साथ-साथ बदलता रहता है। चमक (brightness) को 0.33 तथा बिजली के आघात (Electric Shock) को 3.5 का मूल्य प्रदान किया गया।

7.5 विश्लेषण एवं निष्कर्ष

फेकनर ने अपने नियम में जिस प्रदत्त की व्याख्या की है वह 'स्टीवेंस शक्ति कार्य' से भिन्न है। संवेदना के मापन की पुरानी मनोभौतिकी विधियों की कुछ अपनी ही विशेषताएँ हैं। कुछ विधियों में प्रयोज्य से यह पूछा जाता है कि 'क्या दो उद्दीपक समान हैं?' अथवा 'क्या दो उद्दीपक एक दूसरे से भिन्न हैं?' फिर भी इन विधियों की कुछ अपनी सीमायें एवं कमियां हैं।

इस अध्ययन की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि निष्कर्षात्मक कार्य प्रयोग विधि पर निर्भर करता है। समकालीन प्रविधियों की अपेक्षा प्राचीन (classical) मनोभौतिकीय विधियाँ किसी एक प्रकार के कार्य के अध्ययन में अधिक समर्थ हैं, क्योंकि आजकल प्रयोज्यों से मांगे गए निर्णयों में भिन्नता पाई जाती है। स्टीवेंस तथा उसके सहयोगियों के प्रयोग इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।

7.6 सारांश

मनोभौतिकी के प्राचीन (Classical Method) विधि में मुख्य - 1. औसत अशुद्धि या अभियोजन विधि (AverageError or AdjustmentMethod) 2. सीमा विधि या न्यूनतम परिवर्तन विधि (Method of Limit or Method of Minimal Changes) 3. स्थिर उत्तेजना एवं स्थिर उत्तेजना अंतर विधि (Method of ConstantStimuli and ConstantStimuliDifference) सम्मिलित है। मनोभौतिकी के आधुनिक विधि में फुलर्टन-कैटिल सिद्धांत (Fullerton-Cattell Theory), थर्सटन का तुलनात्मक निर्णय का नियम (Thurston Law of Comparative Decision), हेल्सन का अनुकूलन स्तर (Helson's Adaptation Level), स्टीवेंस का शक्ति कार्य (Steven's Power Function) प्रमुख हैं।

स्टीवेंसन ने फेकनर के नियम को ही संशोधित करते हुए घात नियम (Power Law) को प्रतिपादित किया है।

7.7शब्दावली

- **उद्दीपक (Stimulus):**बाह्य परिवेश से प्राणी द्वारा ग्रहण की जाने वाली घटना को उद्दीपक कहते हैं।
- **अनुक्रिया (Response)**: प्राणी के अंदर होने वाले परिवर्तनों को अनुक्रिया कहते हैं।

- **सीमा विधि:**सीमा का उद्देश्य मुख्य रूप से RL अथवा उत्तेजना सीमान्त (StimulusThreshold) एवं भिन्नता सीमान्त (DifferentialThreshold) पता लगाने या निर्धारित करने से है।
- **स्थिर उत्तेजना विधि:**इसका आशय निरपेक्ष सीमान्त (AbsoluteThreshold) अथवा भिन्नता सीमान्त (DifferentialThreshold) का पता लगाना होता है।
- **औसत अशुद्धि (Method of AverageError):** इसका आशय यह है कि किसी उत्तेजना के परिणाम का मूल्य को देखने या अनुभव में होने वाली त्रुटि (Error) का औसत ज्ञात करना होता है।

7.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. प्राचीन विधि क्या है?
2. प्राचीन विधि के प्रकार बताइये।
3. आधुनिक विधि क्या है?
4. प्राचीन विधि और आधुनिक विधि में अंतर स्पष्ट कीजिये।

7.9 सन्दर्भ ग्रंथसूची

- सिंह, अरुण कुमार, (2002) आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, तृतीय संस्करण, मोतीलाल बनारसीदास पटना।
- मिस्र, ब्रज कुमार, (2010) मनोविज्ञान मानव व्यवहार का अध्ययन, पी.एच. आई. learning private Limited नई दिल्ली।
- श्रीवास्तव, बीना एण्ड आनंद, वर्षा एण्ड आनन्द बानी (2003) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास।
- अस्थाना मधु, (1999) मनोभौतिकी यू. एस. पब्लिशर्स वाराणसी।
- एन.सी.ई.आर.टी. 11(2002)
- सक्सेना, एन.के. एवं भार्गव महेश, (1996) मनोभौतिकी एवं मनोमापनज, भार्गव बुक हाउस राजामंडी आगरा।
- सिंह अरुण कुमार, (2002) आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान तृतीय संस्करण, मोतीलाल बनारसीदास पटना।
- अस्थाना मधु (1999) मनोभौतिकी यू.एस. पब्लिशर्स वाराणसी।

7.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. मनोभौतिकी में प्राचीन विधि तथा आधुनिक विधि को स्पष्ट कीजिये।
2. मनोभौतिकी में प्राचीन विधि तथा आधुनिक विधि की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।

3. मनोभौतिकी में प्राचीन विधि का विस्तृत वर्णन कीजिये।
4. मनोभौतिकी में आधुनिक विधि को स्पष्ट कीजिये।
5. मनोभौतिकी में विधियों का उपयोग बताते हुए उनका वर्णन कीजिये।

इकाई-8 अवधान: स्वरूप, प्रकार एवम सिद्धान्त, अवधान भंग एवंअवधान परिवर्तन(Attention:- Nature, Types and Theories; Shiftand distraction in attention)

इकाई संरचना

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 अवधान का स्वरूप
8.4 अवधान के प्रकार
8.4.1ऐच्छिक अवधान
8.4.2अनैच्छिक अवधान
8.4.3स्वाभाविक अवधान
8.5अवधान के सिद्धान्त: वर्गीकरण
8.5.1 चयनात्मक अवधान के सिद्धान्त
8.5.2 दीर्घावधि अवधान के सिद्धान्त
8.6अवधान भंग एवं परिवर्तन
8.7सारांश
8.8 शब्दावली
8.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
8.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.11निबन्धात्मक प्रश्न

8.1प्रस्तावना

अवधान व्यक्ति के जीवन में हर पल हर क्षण घटने वाली मानसिक प्रक्रिया है। विद्यार्थी जीवन में प्रत्येक विद्यार्थी को अवधान अवधि को बढ़ाने की चिंता सताती रहती है।

वास्तव में इस अवधान का स्वरूप कैसा होता हैं। यह कितने प्रकार का होता है। यह किस सिद्धान्त पर आधारित है। इन सबकी जानकारी आपको इस इकाई में दी जा रही है।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

1. अवधान के स्वरूप को जान सकेंगे।
2. अवधान के प्रकारों का वर्णन कर सकेंगे।
3. अवधान पर लेख लिख सकेंगे।
4. अवधान के सिद्धान्तों का वर्गीकरण कर सकेंगे।
5. अवधान क्यों भंग हो जाता है एवं अवधान मे परिवर्तन कैसे होता है। इसकी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

8.3 अवधान का स्वरूप

अवधान का संबंध हमारे नेत्र, कान, नाक, त्वचा आदि ज्ञानेन्द्रियों से है। ये ज्ञानेन्द्रियाँ हर पल अपने आस-पास के वातावरण में उपस्थित उद्दीपकों के संपर्क में आती रहती हैं तथा उद्दीपकों की प्रभावोत्पादक क्षमता के अनुसार प्रभावित भी होती हैं। परन्तु व्यक्ति उन सभी उद्दीपकों के प्रति अनुक्रिया नहीं करता है। वह अपनी इच्छा तथा जरूरत के अनुसार कुछ खास-खास उद्दीपकों को चुन लेता है और उसके प्रति अनुक्रिया करता है। एक उदाहरण लीजिए - आप कक्षा में बैठे हैं एवं शिक्षक आपको पढ़ा रहे हैं। जिस कमरे में कक्षा हो रही है वह कई उद्दीपकों से भरा होगा, जैसे कि कुर्सी, मेज, बल्ब, दीवार घड़ी, पंखा, अन्य साथी विद्यार्थी आदि। परन्तु इन सभी उद्दीपकों पर आप ध्यान नहीं देते हैं। आप का ध्यान शिक्षक द्वारा बोले जा रहे शब्दों एवं उसके चेहरे की भाव-भंगिमा पर ज्यादा रहता है। अपने कानों द्वारा शिक्षक के शब्दों एवं भाव-भंगिमा पर ध्यान देते समय आप विशेष शारीरिक मुद्रा में रहते हैं। अतः स्पष्ट है कि -

1. अवधान एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जिसमें उद्दीपक का चयन किया जाता है।
2. अवधान की अवस्था में शरीर तदनुरूप समायोजन में रहता है।
3. अवधान की स्थिति में संबंधित उद्दीपक के प्रति अनुक्रियाशीलता होती है।
4. अवधान का विस्तार सीमित होता है - जैसे कि शिक्षक द्वारा कक्षा में पढ़ाये जाते समय अचानक बाहर शोर होने पर आपका ध्यान बंट जाता है।
5. अवधान में अस्थिरता का गुण पाया जाता है।
6. अवधान में विभाजन का गुण पाया जाता है - जैसे कि जब व्यक्ति एक ही परिस्थिति में अलग-अलग दो या दो से अधिक कार्य करना प्रारम्भ कर देता है। तब व्यक्ति अपना ध्यान उन दोनों ही कार्यो पर होता है। अवधान की इस स्थिति को अवधान विभाजन की संज्ञा दी जाती है। उदाहरणार्थ - जब आप भोजन कर रहे हैं एवं साथ ही साथ टेलीविजन भी देख रहे हैं, तो इससे आपका ध्यान दोनों पर यानी भोजन एवं टेलीविजन पर विभाजित हो जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अवधान जो मूलतः ज्ञानेन्द्रियों के वातावरण में उपस्थित कुछ खास उद्दीपकों के प्रति अनुक्रिया करने पर होता है अर्थात इसमें चयनात्मक मानसिक प्रक्रिया घटित होती है, की अन्य कई विशेषताएँ होती हैं। जिसके आधार पर उसे अन्य मानसिक प्रक्रियाओं के बीच विशेष स्थान प्राप्त है।

8.4 अवधान के प्रकार

8.4.1 ऐच्छिक अवधान –

इस अवधान मे व्यक्ति की इच्छा प्रधान होती है। वातावरण में उपस्थित विभिन्न प्रकार के उद्दीपकों में से व्यक्ति अपनी इच्छानुसार कुछ खास किस्म के उद्दीपकों के प्रति ही आकर्षित होता है, अथवा वह उन्हें चुन लेता है। उदाहरण के लिए आपकी दो दिन के बाद परीक्षा है लेकिन आपके पास एक विशेष विषय से संबंधित पुस्तक नहीं है, तथा आप उसे खरीदने बाजार में आए हैं। ऐसी स्थिति में बाजार में उपस्थित दुकानों में से पुस्तक की दुकानों की ओर आप जल्दी ध्यान देंगे। हालॉकि इधर-उधर नजर दौड़ाने पर आपके सामने अनेकों प्रकार की दुकानें होंगी। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि उस समय आपकों सिर्फ पुस्तक की आवश्यकता है, यानी, आपकी इच्छा सिर्फ पुस्तक खरीदने की है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि इस प्रकार के अवधान में -

1. व्यक्ति की एक स्पष्ट इच्छा आवश्यकता होती है। जैसे- पुस्तक खरीदना ।
2. एक स्पष्ट उद्देश्य होता है। जैसे- पुस्तक की दुकान खोजना ।
3. बाधक वस्तुओं की ओर व्यक्ति का ध्यान नहीं देना ।

8.4.2अनैच्छिक अवधान –

इस तरह के अवधान में व्यक्ति की इच्छा या आवश्यकता प्रधान नहीं होती है बल्कि उद्दीपक वस्तु की आकर्षक शक्ति व उसके गुण की प्रधानता होती है। इस तरह के अवधान में व्यक्ति स्वयं अपनी इच्छा या आवश्यकता के कारण किसी वस्तु पर ध्यान नहीं देता है बल्कि उस वस्तु का गुण उसका अपनी ओर ध्यान आकर्षित कर लेता है। उदाहरण के लिए आप अपने विद्यालय की कक्षा में बैठकर शिक्षक की बाते सुन रहे हैं। अचानक बाहर सड़क पर शोर होता है और आपका ध्यान उस शोर की ओर चला जाता है क्योंकि उस शोर की आवाज में तीव्रता (जो कि शोर का विशेष गुण है) अधिक है। इसी तरह रेलवे स्टेशन पर लोगों की भीड़ की वजह से बहुत शोर होता है परन्तु फिर भी हमारा ध्यान उद्घोषणा एवं रेल के हार्न की आवाज की ओर बरबस ही चला जाता है क्यों कि उन दोनों ही आवाजों में तीव्रता अधिक होती है।

इससे स्पष्ट है कि इस प्रकार के अवधान में -

1. व्यक्ति की स्पष्ट इच्छा, या आवश्यकता नहीं होती है।
2. न ही कोई विशेष लक्ष्य होता है।

3. व्यक्ति स्वयं अपना ध्यान लगाने का अतिरिक्त प्रयास नहीं करता है।

8.4.3स्वाभाविक अवधान –

स्वाभाविक अवधान में व्यक्ति का ध्यान किसी वस्तु, आवाज, उद्दीपक की ओर उसके विशेष स्वभाव, अथवा आदत की वजह से बिना किसी प्रयास के कारण ही चला जाता है। उदाहरण के लिए विद्यार्थी का ध्यान किताबों की दुकान की ओर, पानीपूरी खाने वाले का ध्यान पानीपूरी की दुकान की ओर, शराब पीने वालों का ध्यान शराब की ओर, मोची का ध्यान लोगों के जूते की ओर जाना स्वाभाविक अवधान है।

इससे स्पष्ट है कि इस प्रकार के अवधान में -

1. व्यक्ति की इच्छा अथवा आवश्यकता की कोई प्रधानता नहीं होती है।
2. व्यक्ति अपने स्वभाव, आदत एवं विशेष व्यवहार के अभ्यास की वजह से ध्यान देता है।

8.5 अवधान के सिद्धान्त: वर्गीकरण

वर्गीकरण- अवधान पर उपलब्ध सिद्धान्तों को दो वर्गों में बॉटा जा सकता है-1. चयनात्मक अवधान के सिद्धान्त 2. दीर्घावधि अवधान के सिद्धान्त

8.5.1 चयनात्मक अवधान के सिद्धान्त

1) बॉटलनेक (बोतल-गला-अवरोध) सिद्धान्त –

बॉटलनेक सिद्धान्त के नाम के अनुसार इस सिद्धान्त की मान्यता है कि वातावरण में उपस्थित विभिन्न उद्दीपकों में से चयनात्मक प्रक्रिया के तहत कुछ उद्दीपकों अथवा एक उद्दीपक के अवधान में आने से पूर्व ही उसे एक विशेष प्रकार की प्रोसेसिंग (सूचना संसाधन) से गुजरना पड़ता है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार एक बोतल का गला बहुत ही संकरा होता है तथा उसमें से एक समय में बहुत ही कम सामग्री अन्दर प्रवेश कर सकती है। अवधान भी व्यक्ति के जीवन में उसी तरह घटने वाली एक महत्वपूर्ण घटना है। उदाहरण के लिए जिस तरह से यदि हम एक ऐसी बोतल में पानी डालने की कोशिश करते हैं जिसका मुँह छोटा है तो पानी के भीतर जाने में एक तरह का अवरोध उत्पन्न होता है और कुछ मात्रा में पानी बोतल के भीतर जाता है और कुछ मात्रा में पानी बोतल के बाहर गिर जाता है। ठीक इसी तरह यदि व्यक्ति को एक ही साथ कई तरह की सूचनाओं को संसाधित करना पड़ता है या उस पर ध्यान देना पड़ता है, तो वह सभी ऐसी सूचनाओं पर एक साथ ध्यान नहीं दे पाता है क्योंकि अधिक सूचनाओं के कारण मार्ग अवरूद्ध हो जाता है। कुछ सूचनायें इस मार्ग अवरोध को पार करते हुए व्यक्ति के अवधान का विषय बन जाती हैं। परन्तु कुछ सूचनायें पीछे ही रह जाती हैं क्योंकि वे मार्ग अवरोध को पार नहीं कर पाती हैं। जो सूचनायें पीछे रह जाती हैं वह व्यक्ति के अवधान क्षेत्र से बाहर हो जाती हैं।

2) फिल्टर सिद्धान्त -

फिल्टर सिद्धान्त ब्रॉडबेन्ट ने सन् 1958 में प्रतिपादित किया था। इसके अनुसार जब व्यक्ति को एक ही साथ कई तरह की सूचनाओं को संसाधित करना पड़ता है अर्थात् ध्यान देना पड़ता है तो इस आरम्भिक अवस्था में मार्ग अवरूद्ध (बॉटलनेक) हो जाता है। इसलिए इसे बॉटलनेक सिद्धान्तों के ही वर्ग में रखा जाता है। सरल शब्दों में जैसे ही हमारी ज्ञानेन्द्रियॉं (ऑख, नाक, कान, आदि) वातावरण द्वारा प्रेषित कई प्रकार की सूचनाओं के संपर्क में आती हैं तो वे सर्वप्रथम वे उन सूचनाओं से संवेदित होती हैं। इस प्रक्रिया को संवेदन कहा जाता है। संवेदन तुरन्त बाद इन सूचनाओं के संसाधन की प्रक्रिया घटित होती है। चूँकि सामान्य तौर पर व्यक्ति की द्वारा एक साथ बहुत सारी सूचनाओं का संसाधन करने की क्षमता सीमित होती है। अतः वह उन सूचनाओं में से कुछ पर ही ध्यान दे पाता है, एक प्रकार से यहॉं पर व्यक्ति सूचनाओं रूपी सामग्री में से आवश्यक सूचनाओं को फिल्टर कर रहा होता है। ध्यान नहीं दी गयी सूचनाओं का अस्तित्व अवधान की प्रारंभिक अवस्था में ही समाप्त हो जाता है। ब्रॉडबेन्ट के इस सिद्धान्त को फिल्टर सिद्धान्त कहा जाता है एवं अधिक सूचनाओं में से कम सूचनाओं के चयन द्वारा अवधान देने के लिए चुने जाने के कारण यह बॉटलनेक सिद्धान्तों की श्रेणी का ही एक प्रकार है।

ब्राडबेन्ट के सिद्धान्त के अनुसार हम सूचना के भौतिक गुणों के आधार पर उसका चयन करते हैं या उसे एक तरह से छानते (फिल्टर) हैं तथा उस पर ध्यान दे पाते हैं। उदाहरणार्थ - व्यक्ति तेज आवाज पर ध्यान दे पाता है परन्तु मद्धिम आवाज पर नहीं इसका कारण यह है कि मद्धिम आवाज बॉटलनेक को पार करने में असमर्थ रहती है। इस तरह से हम देखते हैं कि ब्रॉडबेन्ट के सिद्धान्त द्वारा इस बात की व्याख्या तो आसानी से हो जाती है कि व्यक्ति सूचना की सभी विशेषताओं में से कुछ पर ध्यान क्यों नहीं दे पाता है। पर व्यक्ति सूचना की कुछ बहुत खास विशेषताओं जैसे कि सूचनाओं के समुद्र में उसका नाम आने पर वह तुरन्त ध्यान देने में समर्थ क्यों हो जाता है, तथा ध्यान नहीं दी गयी सूचना की कुछ विशेषताओं से व्यक्ति अवगत क्यों हो जाता है।

3) तनुकरण सिद्धान्त –

इस सिद्धान्त अथवा मॉडल का प्रतिपादन ट्रीसमैन द्वारा सन् 1964 में किया गया। इस सिद्धान्त के अनुसार सामान्यतया व्यक्ति की सभी ज्ञानेन्द्रियॉं वातावरण में उपस्थित सूचनाओं से संवेदित, उत्तेजित होती रहती हैं जैसे कि आँखें देखने को कार्य कर रही होती हैं, कान सुनने का व नाक गंध लेने का। परन्तु जिस ज्ञानेन्द्रिय विशेष से संबंधित सूचनाओं में अत्यधिक आकर्षण का गुण होता या वह उन पर ध्यान देना चाहता है। सूचना संसाधन की प्रक्रिया में व्यक्ति केवल उन्हीं सूचनाओं को ध्यान देने हेतु चयन कर पाता है। इस प्रकार अन्य सूचनाओं के लिए अवधान हेतु प्रवेश का मार्ग संकुचित हो जाता है। परन्तु यहॉं पर पूरी तरह से इन सूचनाओं के प्रवेश का मार्ग अवरूद्ध नहीं होता है बल्कि वह कुछ संकुचित हो जाता है। अतएव व्यक्ति ध्यान नहीं दी गयी इन सूचनाओं की कुछ विशेषताओं से भी अवगत हो जाता है। ट्रीसमैन ने ब्रॉडबेन्ट की इस बात को नकारा है कि सूचनाओं के संसाधन की प्रारंभिक अवस्था में ही बहुत सी सूचनायें होने पर मार्गअवरोध उत्पन्न हो जाने के कारण बहुत सी सूचनायें व्यक्ति के अवधान में प्रवेश करने से बची रह जाती हैं एवं ध्यान नहीं दे पाने के कारण उस प्रारम्भिक

अवस्था में ही उनका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। ब्रॉडबेन्ट की बात को नकारने के लिए ट्रीसमैन ने एक प्रयोग किया था। इस प्रयोग के अन्तर्गत एक व्यक्ति को एक साथ एक ही समय में दो प्रकार के गद्यांश सुनाये गये। जिनमें एक गद्यांश अंग्रेजी उपन्यास का एक भाग था तथा दूसरा गद्यांश जैवरसायन विज्ञान का विवेचन था। व्यक्ति निर्देश दिया गया था कि उसे अंग्रेजी उपन्यास के गद्यांश को बाद में बोलकर सुनाना होगा। परिणाम में व्यक्ति न केवल अंग्रेजी गद्यांश के सभी अंशों पर ध्यान देने में सफल नहीं हुआ, यानि कि ध्यान देने के निर्देश के बावजूद कुछ अंश अवधान में आने से बचे रह गए, बल्कि दूसरे प्रकार के गद्यांश के भी कुछ अंश व्यक्ति के अवधान में प्रवेश कर गए। इस प्रयोग से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिन सूचनाओं पर व्यक्ति ध्यान नहीं दे पाता है या उन्हें ध्यान नहीं देना रहता है, उनका भी विश्लेषण वह करता है, तथा वे उसके अवधान में कुछ अंशों तक प्रवेश कर जाती हैं।

4) ड्यूश एवं ड्यूश का सिद्धान्त –

बॉटलनेक सिद्धान्तों का ही एक प्रकार ड्यूश उवं ड्यूश का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार ज्ञानेन्द्रियों को मिलने वाली सारी सूचनाओं का व्यक्ति प्रत्यक्षणात्मक रूप से विश्लेषण करता है तथा उनमें से किसी विशेष सूचना का चयन तब होता है जब व्यक्ति को उद्दीपकों के प्रति अनुक्रिया करनी होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति विभिन्न उद्दीपकों से मिलने वाली प्रत्येक सूचना को संसाधित करता है तथा अनुक्रिया करने के ठीक पहले व्यक्ति में सूचना पथ अवरोध अर्थात् बॉटलनेक हो जाता है। बॉटलनेक से यह पता चलता है कि व्यक्ति की स्मृति सीमित है। व्यक्ति कुछ सूचनाओं को भूल जाने के लिए तथा कुछ को याद रखने के लिउ वातावरण में उपस्थिति उद्दीपकों में से चुनता है। परिणामस्वरूप व्यक्ति याद रखे जाने वाली सूचना पर ध्यान देता है तथा विस्मृत किये जाने वाली सूचना पर ध्यान नहीं देता पाता है। इस सिद्धान्त के मॉडल को विलम्बित चयन मॉडल भी कहा जाता है क्योंकि इसमें सूचनाओं के चुने जाने की घटना स्मृति में घटती है न कि संवेदन (इन्द्रियों में सूचनाओं के संपर्क में आने से उत्पन्न उत्तेजन) के तुरन्त बाद और इस प्रकार सूचना संसाधन की अवस्था में यह विलम्ब से होता है।

8.5.2 दीर्घावधि अवधान के सिद्धान्त

दीर्घावधि अवधान के सिद्धान्तों का प्रतिपादन मुख्य रूप से निगरानी कार्यों में सही संकेतों की पहचान में कुछ परिस्थितियों में कुछ समय के बीतने के साथ होने वाली त्रुटियों की व्याख्या एवं वहीं कुछ परिस्थितियों में समय बीतने के साथ मिलने वाली सफलता की व्याख्या करने हेतु किया गया है। कुछ प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन निम्न है -

1) संकेत अभिज्ञान सिद्धान्त –

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन सन् 1952 से 1954 के दौरान, जॉन स्वेट्स नामक मनोवैज्ञानिक के नेतृत्व में कई अमेरिकी शोधकर्ताओं ने किया। सैन्ट्रोक नामक मनोवैज्ञानिक के अनुसार 'यह एक ऐसा सिद्धान्त है जो यह

बतलाता है कि संवेदी उद्दीपकों के प्रति संवेदनशीलता प्रेक्षक की संवेदी क्षमताओं तथा उद्दीपक की भौतिक तीव्रता के अलावा विभिन्न कारकों पर निर्भर करती है। इन कारकों में वैयक्तिक तथा परिस्थितिजन्य बदलाव जैसे कि थकान, प्रत्याशा, परिस्थिति की जरूरत आदि सम्मिलित होते हैं।' इसकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है। जब कोई भी उद्दीपक या सिगलन (संकेत) हमारे सामने उपस्थित किया जाता है तो इससे उत्पन्न संवेदनशीलता मूल रूप से दो बातों पर निर्भर करती है। पहली तो यह होती है कि उस संकेत से संबंधित ज्ञानेन्द्रिय जैसे आवाज संकेत है तो कान उसे पहचानने वाली ज्ञानेन्द्रिय, कोई दृश्य वस्तु संकेत है तो ऑख उसे देखने वाली ज्ञानेन्द्रिय आदि की संवेदी क्षमता कितनी है। यदि इनकी संवेदी क्षमता अधिक होगी तो व्यक्ति उस उद्दीपक या संकेत का प्रत्यक्षण स्पष्ट रूप से कर लेगा। इसे संवेदी कारक कहा गया है। दूसरी बात वह है जिसपर किसी संकेत के प्रति हमारी पहचान निर्भर करती है और उसमें कई कारक एक साथ मिले हुए होते हैं। जैसे व्यक्ति की अभिप्रेरणा, आकर्षण, अपेक्षा-प्रत्याशा शोरगुल कुछ ऐसे कारक हैं जिन पर किसी उद्दीपक या संकेत के प्रति हमारी संवेदनशीलता निर्भर करती है। इन कारकों को असंवेदी कारक कहा जाता है। संकेत अभिज्ञान सिद्धान्त ऐसा सिद्धान्त है जो हमें बताता है कि किसी संकेत की पहचान से संबंधित निर्णय किस सीमा तक संवेदी कारकों द्वारा प्रभावित होता है तथा किस सीमा तक असंवेदी कारकों द्वारा प्रभावित होता है।

अब प्रश्न उठता है कि यह सिद्धान्त निगरानी अथवा सतर्कता जैसे कार्य जिनमें कि आसपास के वातावरण में हो रही प्रत्येक हलचल से संबंधित संकेतों को पकड़ने के लिए दीर्घावधि अवधान की जरूरत होती है, अथवा व्यक्ति को अपना ध्यान लम्बे समय तक लगाए रखना होता है ऐसी स्थिति में कार्य के निष्पादन में हो रही अच्छी बढ़ोत्तरी अथवा निष्पादन में गिरावट अर्थात् संकेतों की पहचान में होने वाली त्रुटियों की व्याख्या किस प्रकार करता है। इगेन, ग्रीनबर्ग आदि मनोवैज्ञानिकों ने इस संदर्भ में काफी प्रयोग किये एवं यह पाया कि सतर्कता से संबंधित कार्यो में जहॉ संकेतों की पहचान के लिए लम्बे समय तक ध्यान देने की जरूरत पड़ती है, जैसे-जैसे संकेत पहचान के प्रयासों की संख्या बढ़ती जाती है, गलत पहचान की अनुक्रिया में कमी आने लगती है तथा सही पहचान की अनुक्रिया में बढ़ोत्तरी होती है। अतएव सतर्कता संबंधी कार्यों में दीर्घावधि अवधान के दौरान मध्यावधि में जो संकेतों की पहचान के कार्य में ह्रास दिखलाई देता है। वह ज्यादा बड़ी चिंता का विषय नहीं है बल्कि कुछ समय और बीत जाने पर सही कार्य निष्पादन में बढ़ोत्तरी ही होती है।

2) जेरीसन का सिद्धान्त –

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन जेरीसन द्वारा सन् 1970 में किया गया। इस सिद्धान्त की मान्यता है कि वातावरण में उपस्थित उद्दीपकों द्वारा प्रदान की जा रही सूचनाओं जिन्हें कि संकेत भी कहा जा सकता है में से कुछ विशेष वांछित संकेतो की पहचान (सही अथवा गलत) तथा पहचानकर्ता द्वारा प्रेक्षण हेतु किये जा रहे अनुक्रियात्मक व्यवहार में एक जटिल संबंध होता है। इस जटिल संबंध को इस प्रकार समझा जा सकता है कि व्यक्ति किसी विशेष वांछित संकेत की सही पहचान करने में तभी सफल होता है जब वह सही प्रेक्षण हेतु सही अनुक्रियात्मक

व्यवहार करता है। इससे उसके दीर्घावधि अवधान में लगा समय सार्थक हो जाता है तथा उसे प्रसन्नता होती है, परिणाम स्वरूप व्यक्ति दीर्घावधि अवधान के कारण हुई थकान को भूल जाता है तथा उसका कार्य निष्पादन सुचारू होने लगता है। वहीं जब व्यक्ति उपयुक्त समय पर सही अनुक्रियात्मक व्यवहार करने का निर्णय नहीं ले पाता व परिणाम स्वरूप वांछित संकेत की सही पहचान नहीं कर पाता है तब वह दुखी हो जाता है इससे उसके अभिप्रेरणा स्तर में गिरावट आती है व दीर्घावधि अवधान की थकान उसे घेर लेती है परिणामस्वरूप इसके उपरान्त भी व्यक्ति से त्रुटियॉं होती रहती है। यद्यपि जेरीसन का यह सिद्धान्त साधारण एवं सरल है फिर भी आलोचकों का मत है कि इस सिद्धान्त की प्रयोगात्मक जॉंच करना कठिन है क्योंकि इसमें प्रेक्षण हेतु अनुक्रियात्मक व्यवहार के आत्मनिष्ठ स्वरूप की सही सही व्याख्या नहीं की गयी है।

3) प्रत्याशा सिद्धान्त –

बेकर तथा डीज नामक मनोवैज्ञानिकों का प्रत्याशा सिद्धान्त के प्रतिपादन एवं व्याख्या में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस सिद्धान्त के अनुसार निगरानी जैसे कार्यों जिनमें कि महत्वपूर्ण संकेतों की पहचान हेतु दीर्घावधि अवधान की जरूरत पड़ती है को करते समय व्यक्ति कुछ समय बीतने के दौरान संकेतों की उपस्थित होने के समय एवं उनके स्वरूप का अध्ययन कर के उनकी भविष्य में उपस्थिति के संबंध में एक प्रत्याशा विकसित कर लेता है वह पूर्वानुमान लगाने लगता है कि विशिष्ट वॉंछित संकेत किस समय उपस्थित हो सकता है। इस संकेत की सही पहचान करने की तत्परता इस प्रत्याशा स्तर से धनात्मक रूप से सहसंबंधित होती है। इसके अनुसार व्यक्ति द्वारा निगरानी कार्यों को करने के दौरान सही संकेत की पहचान करने के कार्य निष्पादन में जो कमी आती है उसका कारण संकेत की उपस्थिति के सही समय का पूर्वानुमान लगाने की क्षमता में आयी कमी होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि निगरानी कार्यों में सही संकेत की पहचान करने में होने वाली त्रुटियों एवं सही संकेत की पहचान करने में सफल होने की बारंबारता में बढ़ोत्तरी की व्याख्या उपरोक्त सिद्धान्तों के आलोक में भिन्न-भिन्न प्रकार से की जा सकती है।

4) अभ्यस्तता सिद्धान्त –

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन जेन मैकवर्थ द्वारा सन् 1968 में किया गया। प्रश्न उठता है कि अभ्यस्तता या अभ्यसन क्या है? अभ्यसन से तात्पर्य एक ऐसी प्रक्रिया से होता है जिसके कारण किसी एक ही उद्दीपक के बार-बार व्यक्ति के सामने आने से तंत्रकीय अनुक्रियाशीलता में उत्तरोत्तर कमी आती जाती है। सामान्यतः जब उद्दीपक पैटर्न की आवृत्ति अधिक होती है, तो तंत्रकीय अभ्यसन की मात्रा भी अधिक होती है। अभ्यसन, थकान से इस अर्थ में भिन्न होता है कि जब उद्दीपक पैटर्न में गुणात्मक, परिमाणात्मक या सामयिक परिवर्तन होता है तो इसमें अनाभ्यसन की प्रक्रिया होने लगती है अर्थात् अनुक्रियाशीलता की अचानक पुनः उपस्थिति हो जाती है। मैकवर्थ के अनुसार अभ्यसन अवरोध की एक सक्रिय प्रक्रिया है और अनियमित संकेतों की तुलना में नियमित संकेतों के साथ अभ्यसन का विकास तेजी से होता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि जब उद्दीपक पैटर्न में नियमितता

होती है तो अभ्यसन का विकास उस परिस्थिति की तुलना में तेजी से होता है जब उद्दीपक पैटर्न अनियमित होता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार यदि दीर्घावधि अवधान कार्य में यदि एक ही तरह के उद्दीपक पैटर्न से बार -बार प्रयोज्य प्रभावित हो रहे हों तो ऐसे उद्दीपक पैटर्न से मस्तिष्कीय अनुक्रियाओं में एक तरह का अभ्यसन उत्पन्न होने लगता है। जब इस तरह का अभ्यसन अधिक मात्रा में उत्पन्न हो जाता है जो प्रयोज्यों में क्रिटिकल सिग्नलों को अन्य सिग्नलों से अलग पहचानने की क्षमता कम हो जाती है। प्रयोज्य स्वयं को अपने कार्य में लम्बे समय तक ध्यान लगाने में असमर्थ पाते हैं तथा उनके कार्य निष्पादन में धीरे-धीरे ह्रास होने लगता है।

5) उत्तेजन सिद्धान्त –

उत्तेजन सिद्धान्त को एक्टिवेशन थ्योरी अर्थात् संक्रियण सिद्धान्त भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त में दीर्घावधि अवधान की व्याख्या न्यूरोफिजियोलॉजिकल आधार पर की जाती है। इसके अनुसार दीर्घावधि अवधान या ऐसे कार्य जिनमें लम्बी अवधि तक निगरानी जैसा कार्य करने की आवश्यकता होती है में रेटीकुलर फॉरमेशन की विशेष भूमिका होती है। इसे आर. ए. एस. यानि रेटीकुलर एक्टिवेटिंग फारमेशन भी कहते हैं। आर.ए.एस. मस्तिष्क में एक जालीनुमा संरचना होती है जो सुषुम्ना के ऊपरी भाग से प्रारम्भ होकर थैलेमस तक फैला होता है। जब संवेदी निवेश (सेन्सरी इनपुट) स्पाइनल कॉर्ड द्वारा आर.ए.एस में पहुँचते हैं तो इससे सेरीब्रल कॉर्टेक्स के पूरे क्षेत्र में आवेगों का एक विस्तृत पैमाने पर सृजन होता है जिससे व्यक्ति उत्तेजन या सतर्कता का एक सामान्य स्तर पर निर्माण होता है। अब प्रश्न यह उठता है कि आर.ए.एस. के उत्तेजन प्रक्रम (एक्टिवेटिंग मेकेनिज्म) द्वारा दीर्घावधि अवधान की व्याख्या कैसे होती है? उत्तेजन सिद्धान्त के अनुसार आर.ए.एस. के द्वारा ठीक प्रकार से कार्य करने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति के प्रत्यक्षज्ञानात्मक वातावरण (परसेप्चुअल इन्वायरमेंट) में पर्याप्त परिवर्तनशीलता हो अर्थात् उद्दीपक में पर्याप्त परिवर्तनशीलता हो। यदि उद्दीपक परिवर्तनशीलता एक क्रिटिकल लेवल से नीचे होता है तो व्यक्ति में उत्तेजनशीलता का स्तर कम होता है तथा दीर्घावधि अवधान में ह्रास उत्पन्न होता है।

8.6 अवधान भंग एवं परिवर्तन

(i) अवधान भंग का स्वरूप - अवधान भंग व्यक्ति के जीवन में घटने वाली एक बड़ी ही महत्वपूर्ण घटना है जिसका मनोवैज्ञानिकों द्वारा विशेष रूप से अध्ययन किया गया है। जब व्यक्ति किसी वातावरण में किसी एक उद्दीपक वस्तु पर अपना ध्यान लगाए हुए होता है और उसी बीच में कोई दूसरा उद्दीपक वस्तु आ जाने से व्यक्ति का ध्यान पहली वस्तु से हटकर दूसरी वस्तु पर चला जाता है। इस प्रक्रिया को अवधान भंग कहा जाता है। उदाहरण के लिए अभी आप इस पुस्तक को पढ़ रहे हैं। अतः आपका ध्यान इस पुस्तक के विशेष पेज पर है जिसे आप पढ़ रहे हैं। परन्तु यदि अचानक कोई आपके कमरे के दरवाजे को जोर-जोर से खटखटाए अथवा डोर बेल

बजाए तो आपको ध्यान पुस्तक से हटकर दरवाजे के खटखटाने की अथवा डोर बेल की आवाज की ओर चला जाता है यानि आपका अवधान भंग हो जाता है।

(ii) अवधान भंग से संबंधित प्रयोग -मनोवैज्ञानिकों ने अवधान भंग से सम्बंधित कई प्रयोग किये हैं और यदि इन सभी प्रयोगों के परिणाम को देखा जाए तो हम किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहँचते हैं क्योंकि कुछ प्रयोगों में ध्यान भंग से निष्पादन में कमी होती पायी गयी है तो कुछ प्रयोगों में ऐसी बात नहीं देखी गयी है। उदाहरण के लिए हॉवे ने 1928 में एक प्रयोग किया जिसमें उनने कॉलेज के विद्यार्थियों को आर्मी अल्फा परीक्षण पर प्राप्त प्राप्तांकों के आधार पर दो भागों में बॉट दिया। इनमें से एक समूह को उन्होंने प्रयोगात्मक समूह तथा दूसरे को नियंत्रित समूह बनाया। छः सप्ताह बाद दोनों ही समूहों को दो अलग-अलग परिस्थितियों में आर्मी अल्फा परीक्षण का दूसरा फार्म भरवाया गया। प्रयोगात्मक समूह को फार्म भरने का कार्य ऐसी परिस्थिति में करना था जहॉं कि अनेकों सुनाई देने वाली आवाजें एवं दृश्य प्रकाश विकर्षक के रूप में मौजूद थे। ये दोनों तरह के विकर्षक काफी तीव्र शक्ति वाले थे। नियंत्रित समूह को वही फार्म भरने का कार्य सामान्य परिस्थिति जिसमें कि कोई विकर्षक मौजूद नहीं था करने को दिया गया। परिणाम में पाया गया कि प्रयोगात्मक समूह की परिस्थिति में ध्यान भंग होने की सारी संभावनाएँ मौजूद होने के बावजूद उनके परीक्षण पर प्राप्त औसत प्राप्तांकों एवं नियंत्रित समूह द्वारा प्राप्त औसत प्राप्तांक के बीच कोई सार्थक अन्तर नहीं था। दोनों ही समूहों के औसत प्राप्तांक करीब-करीब बराबर थे। दूसरे शब्दों में यद्यपि प्रयोगात्मक समूह के सदस्यों का ध्यान भंग हो रहा था। फिर भी इनके निष्पादन पर कोई विशेष असर नहीं पड़ा।

अवधान भंग द्वारा निष्पादन में गिरावट से संबंधित प्रयोग - कुछ ऐसे भी मनोवैज्ञानिक हैं जिन्होंने यह दिखलाया है कि ध्यान भंग से निष्पादन में गिरावट आती है। फेन्ड्रिक नामक मनोवैज्ञानिक ने सन् 1937 में एक प्रयोग किया जिसमें विद्यार्थियों को एक कहानी पढ़नी थी तथा उसे समझना था। जब वे कहानी पढ़ रहे थे, उनके नजदीक एक फोनोग्राफ बजाया जा रहा था ताकि उन विद्यार्थियों के ध्यान ने कुछ बाधा उत्पन्न हो सके । परिणाम मे देखा गया कि ऐसी अवस्था में छात्रों को कहानी पढ़ने में काफी त्रुटियॉं हुई तथा उसके अर्थ को समझने में काफी कठिनाई हुई। हेण्डरसन एवं उनके सहयोगियों ने सन् 1945 में किये गये अपने प्रयोग में पाया कि जब लोगों को कहानी एक ऐसी परिस्थिति में पढ़ने को कही गयी जिसमें बगल में संगीत बज रहा था तो उसे कहानी को पढ़ने में तो लोगों को कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई लेकिन उस कहानी के तथ्यों को समझने की मात्रा में अवश्य ही सार्थक रूप से कमी आयी।

(iii) अवधान भंग पर हुए कुछ अन्य प्रयोग - मनोवैज्ञानिकों ने कुछ ऐसे भी प्रयोग किए हैं जिनमें यह प्रदर्शित किया गया है कि अवधान भंग में सिर्फ बाहरी उद्दीपकों का ही विकर्षक के रूप में महत्व नहीं होता। बल्कि व्यक्ति का पिछला अनुभव, उसकी अपेक्षाएँ जिसे प्रत्याशा कहा जाता है एवं मनोवृत्ति भी उतनी ही महत्वपूर्ण होती है।

बेकर द्वारा सन् 1937 में एक प्रयोग किया गया जिसमें यह प्रदर्शित किया गया है कि अवधान भंग में व्यक्ति की मनोवृत्ति तथा प्रत्याशा का काफी महत्व होता है। इस प्रयोग में कुल 40 प्रतिभागी थे। इन्हें चार बराबर समूहों में बॉटा गया जिसमें प्रत्येक में 10 प्रतिभागियों को रखा गया। इनमें से एक समूह को नियंत्रित समूह के रूप में रखा गया तथा तीन समूहों को तीन अलग-अलग प्रकार की जानकारी एवं सुझाव देकर उनमें अलग-अलग प्रकार की मनोवृत्ति एवं प्रत्याशा उत्पन्न की गयी। इन सभी समूहों को मौखिक रूप से हल करने के लिए कुछ विशेष प्रकार की अंकगणितीय समस्यायें दी गयीं तथा उन्हें एक ऐसे कक्ष में रखा गया जहॉं पर कि कुछ लोग जोर-जोर से बातचीत करने में संलग्न थे तथा संगीत निरन्तर बज रहा था। समस्या देते समय तीन समूहों को निम्न प्रकार की जानकारियॉं एवं सुझाव दिये गये-

1. पहले समूह को कहा गया कि संगीत या दूसरे लोगों द्वारा बातचीत करने की परिस्थिति में अंकगणितीय समस्याओं को हल करने की उनकी क्षमता में कमी आयेगी।
2. दूसरे समूह को कहा गया कि संगीत या दूसरे लोगों द्वारा बातचीत करने की परिस्थिति में अंकगणितीय समस्याओं को सुलझाने में मदद मिलेगी।
3. तीसरे समूह को कहा गया कि संगीत या दूसरे लोगों द्वारा बातचीत करने की परिस्थिति में अंकगणितीय समस्याओं को सुलझाने में पहले तो उन्हें कठिनाई होगी परन्तु कुछ समय के बाद उन्हें लाभ होगा या ऐसी परिस्थिति से उन्हें मदद मिलेगी।
4. चौथे समूह अर्थात नियंत्रित समूह को कोई भी जानकारी अथवा सुझाव नहीं दिया गया।

इस अनुसंधान में बड़ें ही रोचक परिणाम प्राप्त हुए। प्रथम तीनों समूहों का निष्पादन ठीक वैसा ही था जैसा कि सुझाव देने से उनमें प्रत्याशा एवं मनोवृत्ति उत्पन्न हुई थी। चूँकि नियंत्रित समूह को किसी प्रकार का कोई सुझाव नहीं दिया गया था, अतः उनके निष्पादन में इस प्रकार की कोई स्पष्टता नहीं थी। इससे यह साबित हो गया कि अवधान भंग होने में न केवल विकर्षक बल्कि व्यक्ति की स्वयं की प्रत्याशा एवं मनोवृत्ति भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

(iv) अवधान भंग से बचाव के तरीके - मनोवैज्ञानिकों ने अवधान भंग पर अपने शोध के दौरान पाया कि कई बार विकर्षकों के मौजूद होने के बावजूद व्यक्ति की कार्य निष्पादन में कोई कमी नहीं आती है, अथवा कार्य निष्पादन की प्रारंभिक अवस्था में तो विकर्षकों की उपस्थिति से कार्य निष्पादन की गुणवत्ता प्रभावित होती है, परन्तु जैसे-जैस समय बीतता जाता है वैसे-वैसे विकर्षकों के उपस्थित रहने पर भी कार्य निष्पादन की गुणवत्ता में उत्तरोत्तर बढ़ोत्तरी होती जाती है। मनोवैज्ञानिकों ने इसके पीछे छिपे कारणों को खोजने अथवा इसकी प्रक्रिया का पता लगाने के लिए पुनः प्रयोग किये व दो प्रकार के उपाय खोज निकाले। वे दो उपाय अथवा अवधान भंग नहीं होने देने की विधियॉं निम्नलिखित हैं-

1. शारीरिक प्रयास /शक्ति का प्रयोग

2. अनुकूलन की प्रक्रिया

शारीरिक प्रयास /शक्ति का प्रयोग - मॉर्गन ने 1936 में एक प्रयोग किया जिसमें उन्होंने एक प्रयोज्य को टाइपराइटर पर एक लेख टाइप करने के लिए दिया। टाइप करते समय टाइपराइटर पर अंगुलियों द्वारा पड़ने वाले दबाव तथा प्रयोज्य की श्वसन दर आदि शारीरिक अनुक्रियाओं की शक्ति मापन की पूरी व्यवस्था की गयी। प्रयोज्य को प्रयोग में लेख टाइप करते समय कई प्रायोगिक अवस्थाओं से गुजरना पड़ा। जिसके अंतर्गत प्रयोज्य को शान्त वातावरण में लेख टाइप करते करते अचानक शोर-गुल आदि की अवस्था में जिसमें की विभिन्न प्रकार की घंटियॉ एवं रेडियो आदि बजते थे में टाइप करना जारी रखना पड़ता था, तथा कुछ ही समय उपरान्त फिर से शान्त अवस्था में टाइप करना होता था। परिणाम में पाया गया कि शोर गुल की अवस्था में प्रयोज्य की अंगुलियों का दबाव टाइपराइटर पर काफी बढ़ जाता था तथा वह टाइप करते समय उसका ध्यान भंग न हो इसके लिये लेख की सामग्री को जोर-जोर से पढ़ने भी लगता था, इससे उसकी श्वसन दर में भी वृद्धि हो जाती थी। वहीं शान्त अवस्था में उसकी अंगुलियों का टाइपराइटर पर दबाव व स्वयं की श्वसन दर सामान्य रहती थी। इससे यह सिद्ध हो गया कि व्यक्ति अवधान भंग से बचने के लिए शारीरिक प्रयास अथवा शारीरिक शक्ति का प्रयोग भी करता है।

(v) अनुकूलन की प्रक्रिया – अनुकूलन दूसरी प्रविधि है जिसके सहारे व्यक्ति का ध्यान भंग होने से बचता है। इसे इस प्रकार समझ सकते हैं कि आप ने रेलवे अथवा बस स्टेशन के अति निकट रहने के लिए मकान लिया है तो प्रारम्भ के कुछ दिनों तक आप परेशान रहते हैं और आप का ध्यान रेल व बस की आवाज के शोर के कारण किया कार्य में ठीक से नहीं लग पाता है। परन्तु कुछ दिनों या पॉच, छः सप्ताह के बाद आप अपना प्रत्येक काम बिना किसी परेशानी के कर लेते हैं। यहॉं तक कि गहरी नींद सो भी लेते हैं जबकि रेल अथवा बस की आवाजे पूर्ववत आती रहती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि आप अपने प्रत्येक कार्य में अच्छी तरह ध्यान लगा पाते हैं। इसका कारण यह है कि आपने अपने आपको उसे विशेष परिस्थिति के साथ अनुकूलित कर लिया है। इस प्रक्रिया को मनोविज्ञान में अनुकूलन कहा जाता है।

इस तरह से हम देखते हैं कि व्यक्ति में अवधान भंग एक महत्वपूर्ण घटना है। इस पर सिर्फ बाहरी उद्दीपक जो कि विकर्षक के रूप में कार्य करते हैं, का ही प्रभाव नहीं पड़ता है बल्कि व्यक्ति की मनोवृत्ति तथा प्रत्याशा का भी प्रभाव पड़ता है। शारीरिक शक्ति व प्रयास तथा अनुकूलन द्वारा अवधान में बाधक विकर्षणों के प्रभाव को कम किया जा सकता है।

8.7सारांश

अवधान एक ऐसी चयनात्मक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति एक विशेष शारीरिक मुद्रा बनाकर किसी वस्तु या उदीपक को चेतना केन्द्र से लाने के लिए तत्पर रहता है।

अवधान के मुख्य तीन प्रकार होते हैं - ऐच्छिक ध्यान, अनैच्छिक ध्यान तथा स्वाभाविक ध्यान। ऐच्छिक ध्यान में व्यक्ति की इच्छा तथा आवश्यकता की प्रधानता होती है। अनैच्छिक ध्यान में उद्दीपक के कुछ खास-खास गुण होते हैं जिनकी प्रधानता होती है। स्वाभाविक ध्यान में व्यक्ति का ध्यान किसी वस्तु, उत्तेजना या घटना की ओर उसकी विशेष प्रशिक्षण एवं आदत के कारण जाता है।

अवधान के मुख्य तीन कार्य बतलाए गए हैं - अवधान एक संवेदी फिल्टर के रूप में कार्य करता है, अवधान द्वारा अनुक्रियाओं का चयन होता है तथा अवधान चेतन के एक प्रवेश द्वार के रूप में कार्य करता है।

दीर्घावधि अवधान की सैद्धान्तिक व्याख्या करने के लिए कई तरह के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है जिनमें पॉच प्रमुख हैं- प्रत्याशा सिद्धान्त, जेरीसन का सिद्धान्त, संकेत-पहचान सिद्धान्त, उत्तेजन सिद्धान्त, तथा अभ्यसन सिद्धान्त। इनमें से प्रथम तीन संज्ञानात्मक सिद्धान्त हैं तथा अन्तिम दो न्यूरोदैहिक सिद्धान्त हैं।

8.8 शब्दावली

- **अवधान:** एक ऐसी चयनात्मक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति एक विशेष शारीरिक मुद्रा बनाकर किसी वस्तु या उदीपक को चेतना केन्द्र से लाने के लिए तत्पर रहता है।
- **चयनात्मक अवधान:** एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति कुछ खास क्रिया या उद्दीपक पर अपनी मानसिक एकाग्रता दिखलाता है तथा अन्य क्रियाओं या उद्दीपक पर न के बराबर ध्यान देता है।
- **दीर्घावधि अवधान:** एक ऐसी प्रत्यक्षज्ञानात्मक प्रक्रिया है जिसे निगरानी भी कहा जाता है, जिसमें व्यक्ति अधिक समय तक अपना ध्यान किसी उद्दीपक पर केन्द्रित किये रहता है तथा उस उद्दीपक के प्रति सतर्कता बनाये रखता है।

8.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. रोगी का अवधान दवा की दुकान की ओर जाना को आप निम्नांकित में से किस श्रेणी अवधान कहेंगे?
   (क) ऐच्छिक अवधान
   (ख) अनैच्छिक अवधान
   (ग) स्वाभाविक अवधान
   (घ) अस्थिर अवधान
2. निम्नांकित में से कौन सा गुण अवधान में नहीं पाया जाता है?
   क) अवधान में विशेष प्रकार का शारीरिक अभियोजन होता है।
   ख) अवधान का विस्तार सीमित होता है।
   ग) अवधान में विभाजन का गुण पाया जाता है।

घ) अवधान का स्वरूप भावात्मक होता है।

3. चयनात्मक अवरोध के सिद्धान्तों में सबसे पहला सिद्धान्त किनके द्वारा प्रतिपादित किया गया?

क) ट्रीसमैन द्वारा

ख) ब्रौडबेन्ट द्वारा

ग) नॉरमेन एवं बोबरो द्वारा

घ) नाइसर द्वारा

4. दीर्घावधि अवधान के क्षेत्र में किये गये प्रयोगों के आलोक में निम्नांकित में से कौन कथन सत्य है?

क) दीर्घावधि अवधान एक तीव्र क्रिया है जिसमें व्यक्ति को काफी मानसिक प्रयास करना पड़ता है।

ख) दीर्घावधि अवधान में व्यक्ति में सतर्कता का स्तर निम्न होता है।

ग) दीर्घावधि अवधान एक तरह का विभाजित अवधान होता है।

घ) दीर्घावधि अवधान में अस्थिरता नहीं पायी जाती है।

5. जेरीसन मॉडल के अनुसार दीर्घावधि अवधान की व्याख्या किस प्रकार की गयी है?

क) उत्पन्न प्रेक्षण दर प्राकल्पना के रूप में।

ख) ऐकिक एकाग्र कार्य के रूप में।

ग) व्यक्ति की प्रत्याशा के रूप में।

घ) व्यक्ति के निर्णय प्रक्रियाओं के रूप में।

उत्तर:1 - क 2 - घ 3 - ख 4 - क 5 – ग

8.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- उच्चतर प्रायोगिक मनोविज्ञान - डा. अरूण कुमार सिंह - मोतीलाल – बनारसीदास
- सामान्य मनोविज्ञान - सिन्हा एवं मिश्रा - भारतीय भवन
- आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान - सुलैमान एवं खान - शुक्ला बुक डिपो, पटना
- एक्सपेरिमेन्टल साइकोलॉजी - कॉलिन्स एवं ड्रेक
- एक्सपेरिमेन्टल साइकोलॉजी - ऑएगुड

8.11निबन्धात्मक प्रश्न

1. ध्यान के प्रमुख प्रकारों का सोदाहरण वर्णन करें।

2. चयनात्मक अवधान से आप क्या समझते हैं? मार्गावरोधी सिद्धान्तों द्वारा इसकी व्याख्या किस तरह से होती है?
3. अवधान भंग एवं अवधान परिवर्तन के बारे में विस्तार से समझायें।
4. दीर्घावधि अवधान के प्रमुख सिद्धान्तों का सविस्तार वर्णन करें।

इकाई-9प्रत्यक्षीकरण: स्वरूप एवं सिद्धान्त, प्रत्यक्षण को प्रभावित करने वाले कारक, आकृति एवं आधार प्रत्यक्षण(Perception:- Nature and Theory, Influencing Factors of Perception, Figure and Background Perception)

इकाई संरचना

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 प्रत्यक्षण का स्वरूप
9.4 प्रत्यक्षण के सिद्धान्त
9.5 प्रत्यक्षण को प्रभावित करने वाले कारक
9.6 आकृति एवं पृष्ठभूमि प्रत्यक्षण
9.7 सारांश
9.8 शब्दावली
9.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
9.10सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

प्रत्यक्षण एक मानसिक प्रक्रिया है। यह एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। इसका मानव व्यवहार से बड़ा गहरा संबंध है। व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रियाओं का सही अध्ययन सही प्रत्यक्षण पर ही निर्भर करता है। प्रत्यक्षण की क्रिया संवेदन की प्रक्रिया से आरंभ होती है और किसी व्यवहार करने की क्रिया के पहले तक होती रहती है। इस प्रकार प्रत्यक्षण की प्रक्रिया संवेदन तथा व्यवहार करने के बीच की प्रक्रिया होती है। इस इकाई में प्रत्यक्षण के यथार्थ स्वरूप उसके विभिन्न सिद्धान्तों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- प्रत्यक्षण के स्वरूप को जान सकेंगे।
- प्रत्यक्षण के सिद्धान्तों का वर्गीकरण एवं वर्णन कर सकेंगे।
- प्रत्यक्षण को प्रभावित करने वाले कारकों की सूची बना सकेंगे।

- आकृति एवं पृष्ठभूमि प्रत्यक्षण के स्वरूप को जान सकेंगे।
- आकृति एवं पृष्ठभूमि प्रत्यक्षण को दैनिक जीवन में समझ सकेंगे।

9.3 प्रत्यक्षण का स्वरूप

प्रत्यक्षण के स्वरूप को निम्न परिभाषाओं के अध्ययन द्वारा बड़ी ही आसानी से समझा जा सकता है। एटकिंसन, एटकिंसन एवं हिलगार्ड के अनुसार 'प्रत्यक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम वातावरण में उपस्थित उद्दीपकों के प्रतिरूपों की व्याख्या करते हैं एवं उनका संगठन करते हैं।' अरूण कुमार सिंह के अनुसार 'प्रत्यक्षण एक सक्रिय, चयनात्मक एवं संज्ञानात्मक मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति को अपने आंतरिक अंगों (आंतरिक वातावरण) तथा बाह्य वातावरण में उपस्थित वस्तुओं का उसी क्षण अनुभव होता है।'

कोलमैन के अनुसार 'प्रत्यक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने शरीर के भीतरी अंगों एंव बाहरी दुनिया के बारे में जानकारी प्राप्त करता है।'

सैनट्रोक के अनुसार 'संवेदी सूचनाओं को अर्थ प्रदान करने के लिए मस्तिष्क द्वारा सूचनाओं को संगठित करने एवं व्याख्या करने की प्रक्रिया को ही प्रत्यक्षण कहा जाता है।'

इन परिभाषाओं के अध्ययन से प्रत्यक्षण के स्वरूप के संबंध में निम्न बातें स्पष्ट हो जाती हैं-

1. प्रत्यक्षण के लिए वातावरण में उद्दीपक का होना आवश्यक है।
2. प्रत्यक्षण मेंउद्दीपक का तत्काल अनुभव होता है।
3. प्रत्यक्षण एक सक्रिय मानसिक प्रक्रिया है।
4. प्रत्यक्षण एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया है।
5. प्रत्यक्षण की प्रक्रिया के दौरान उद्दीपकों को संगठित करने की मानसिक क्रिया घटित होती है।
6. प्रत्यक्षण एक चयनात्मक प्रक्रिया है।

9.4 प्रत्यक्षण के सिद्धान्त

प्रत्यक्षण की प्रक्रिया को पूरी तरह समझने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने मुख्यतः सात तरह के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है जो कि निम्नांकित हैं-

- दैहिक सिद्धान्त
- प्रत्यक्ष सिद्धान्त
- सूचना-संसाधन सिद्धान्त
- गेस्टाल्टवादी सिद्धान्त
- व्यवहारवादी सिद्धान्त

- निर्देश अवस्था सिद्धान्त
- कृत्रिम बुद्धि सिद्धान्त

इन सिद्धान्तों का विशद वर्णन क्रमानुसार निम्न प्रकार से है-

1) प्रत्यक्षण का दैहिक सिद्धान्त -

इस सिद्धान्त के अन्तर्गत प्रत्यक्षण की प्रक्रिया के दौरान होने वाली अनुभूतियों की व्याख्या करने के लिए शरीर में व्याप्त अगणित न्यूरोन के बीच होने वाली आवेशीय क्रिया को आधार बनाया जाता है। इस सिद्धान्त की मुख्य मान्यता यह है कि व्यक्ति ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से वातावरण में फैले हुए उद्दीपकों के संपर्क में आता है। उद्दीपक के संपर्क में आते ही उसके तंत्रिका तंत्र में तंत्रिका आवेश उत्पन्न हो जाता है जो तत्काल मस्तिष्क के विशिष्ट क्षेत्र में पहुँचता है। इसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति को उसे उद्दीपक का प्रत्यक्षण होता है। यह सिद्धान्त केवल इस अध्ययन तक ही सीमित नहीं है कि प्रत्यक्षण किस प्रकार से होता है एवं उसकी व्याख्या किस तरह से की जाये बल्कि इसमें अलग-अलग प्रकार के प्रत्यक्षण के दौरान मस्तिष्क के जिन क्षेत्रों में अन्तःक्रियाएं होती हैं, उनके आधार को भी जानने की कोशिश की जाती है, प्रत्यक्षणात्मक स्थिरता आदि की व्याख्या की जाती है। इस सिद्धान्त के संबंध में हेब नामक वैज्ञानिक का मत है कि केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र के विशेष क्षेत्र की कोशिका के उत्तेजित होने की प्रक्रिया पर प्रत्यक्षण निर्भर करता है। जब तक उस विशेष कोशिका में उत्तेजन नहीं होगा, प्रत्यक्षण नहीं होगा।

2) प्रत्यक्षण का प्रत्यक्ष सिद्धान्त -

प्रत्यक्ष सिद्धान्त का प्रतिपादन गिब्सन नामक वैज्ञानिक द्वारा सन् 1966 में किया गया। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान गिब्सन 'आर्मी एयर कौर्पस' में एक अधिकारी के रूप में कार्य करते थे जहॉ उनकी मुख्य भूमिका हवाई जहाज के उड़ान भरते एवं उतरते समय उसमें हुई समस्याओं का गहन रूप से अध्ययन करना थी। इसी अध्ययन के दौरान उनके मन में एक विचार आया जिसमें प्रत्यक्षण के सिद्धान्त की नींव पड़ी। वह विचार था कि व्यक्ति की ऑख के अक्षिपटल (रेटीना) पर पड़ने वाली रोशनी अपने आप में ऐसा संगठित स्वरूप लिए हुए होती है जिसमें कि वह रोशनी जिस उद्दीपक से टकराकर आ रही है उससे संबंधित ज्ञान समाहित होता है, और उसे अर्थपूर्ण होने के लिए केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र द्वारा विस्तृत व्याख्या किए जाने की आवश्यकता नहीं होती है।

गिब्सन का मानना है कि हमारी ऑख में प्रवेश करने वाली रोशनी काफी संगठित एवं संरचित होती है। अब प्रश्न उठता है कि रोशनी में इस तरह की संगठन क्षमता किस तरह से उत्पन्न हो जाती है। इस प्रश्न का उत्तर गिब्सन ने बड़े ही सीधे ढंग से दिया है ओर कहा है कि रोशनी जो कि हमारी ऑख में प्रवेश करती है, वातावरण में उपस्थित उद्दीपकों (वस्तुओं) से परावर्तित होती है और इस रोशनी में इन वस्तुओं से संगत सारी सूचनाएँ समाहित होती हैं। चूंकि वातावरण की ऐसी वस्तुएँ अपने आप में संगठित एवं संरचित होती हैं, और चूँकि रोशनी का परावर्तन भी क्रमबद्ध ढंग से होता है, अतः रोशनी में उन वस्तुओं के गुणों का संगठन स्वरूप अपने आप आ

जाता है। इस तरह से गिब्सन ने इस बात पर विशेष रूप से जोर डाला है कि प्रत्यक्षण को उस वातावरण का विश्लेषण करके ठीक ढंग से समझा जा सकता है।

3) प्रत्यक्षण का सूचना-संसाधन सिद्धान्त -

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन कम्प्यूटर तथा संचार विज्ञान में अभिरूचि रखने वाले मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया गया है। इस सिद्धान्त में वातावरण में उपस्थित विभिन्न उद्दीपकों (वस्तुओं) से प्राप्त सूचनाओं के संसाधन द्वारा प्रत्यक्षण की व्याख्या की गई है। यहाँ पर सूचना के संसाधन से तात्पर्य विभिन्न सूचनाओं के विभिन्न प्रकार के बन सकने वाले संगठनों द्वारा प्रकट किये जाने वाले विशिष्ट अर्थ से है। सूचना से तात्पर्य एक ऐसे ज्ञानात्मक अनुभव से है जिसके हो जाने पर व्यक्ति के मन में उद्दीपक वस्तु के बारे में बनी अनिश्चितता समाप्त हो जाती है। उदाहरण के लिए आप अपने विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में मनोविज्ञान की एक विशेष किताब खोज रहे हैं। आपको जानकारी है कि पुस्तकालय में वह पुस्तक उपलब्ध है, परन्तु वह किताब ठीक ठीक कहाँ पर रखी हुई है यह आपको मालूम नहीं है। अगर कोई सहपाठी आपको यह बताए कि वह किताब पुस्तकालय में है तो यह तथ्य आपके लिए कोई 'सूचना' नहीं हो सकता है, क्योंकि आपको यह मालूम नहीं होता है कि पुस्तक वास्तव में कहाँ है। दूसरे शब्दों में, आपके मन में अनिश्चितता बनी की बनी ही रह जाती है।

सूचना संसाधन सिद्धान्त की यह मान्यता है कि व्यक्ति की प्रत्यक्षण क्षमता सीमित होती है। अतः कोई व्यक्ति वातावरण में उपस्थित बहुत सारे उद्दीपकों में से कुछ का ही प्रत्यक्षण कर पाता है। अगर व्यक्ति किसी एक सूचना पर ध्यान देता है तो उसे दूसरे तरह की सूचना को छोड़ना पड़ता है। प्रत्यक्षणकर्ता में किसी भी सूचना का प्रवाह कई चरणों में सम्पन्न होता है। इसका वर्णन निम्नांकित है-

1. उद्दीपक - प्रथम चरण में व्यक्ति का सामना उद्दीपक से होता है।
2. संवेदी ग्राहक - द्वितीय चरण में उद्दीपक व्यक्ति के संवेदी ग्राहक अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों अर्थात् नेत्र, कान, नाक, त्वचा आदि को प्रभावित करता है जिससे सूचनायें केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र में पहुँचती हैं।
3. केंद्रीय तंत्रिका तंत्र - केंद्रीय तंत्रिका तंत्र उन सूचनाओं को ग्रहण करता है। ऐसी सूचनायें वहाँ पहले से उपस्थित सूचनाओं से प्रभावित होती हैं। पहले से उपस्थित सूचनाओं को मनोवैज्ञानिक शोर की संज्ञा दी जाती है।
4. कॉर्टिकल मस्तिष्कीय केन्द्र - केंद्रीय तंत्रिका तंत्र द्वारा ग्रहण की गई सूचनाओं को मस्तिष्क के विभिन्न केंद्रों द्वारा संसाधित किया जाता है।
5. अनुक्रिया - अन्त में कॉर्टिकल मस्तिष्कीय केंद्रों से प्राप्त सूचना के आधार पर व्यक्ति प्रत्यक्षण की अनुक्रिया ठीक ढंग से कर पाता है।

सूचना संसाधन सिद्धान्त के अनुसार प्रत्यक्षण, संवेदन तथा अन्य उच्चतर मानसिक क्रियायें एक दूसरे से भिन्न नहीं होती हैं बल्कि एक-दूसरे से अंतरसंबंधित होती हैं। अतः उन्हें एक-दूसरे से अलग कर अध्ययन करना उचित

नहीं है। जब व्यक्ति की ज्ञानेन्द्रियॉं किसी उद्दीपक से प्रभावित होती हैं तब संवेदन की मानसिक प्रक्रिया घटित होती है, इसके उपरान्त उसका संसाधन करने से व्यक्ति को प्रत्यक्षण होता है। प्रत्यक्षित वस्तुओं अथवा घटनाओं को संसाधित कर व्यक्ति उसे स्मृति में लाना है।

4) प्रत्यक्षण का गेस्टाल्टवादी सिद्धान्त -

गेस्टाल्ट सिद्धान्त के प्रतिपादन में 'स्कूल ऑफ गेस्टाल्ट साइकोलॉजी' के वर्दाइमर, कोहलर, कोफ्का का सर्वाधिक योगदान रहा है। इस सिद्धान्त के महत्वपूर्ण बातों को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत समझाया गया है।

1. **सम्पूर्णता में प्रत्यक्षण-** गेस्टाल्ट सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति किसी वस्तु का प्रत्यक्षण अलग-अलग रूप में न कर सम्पूर्ण रूप (as a whole) करता है। इस सम्पूर्णता में घटित होने वाले प्रत्यक्षण का अपनी एक विशेषता होती है। इस विशेषता के अनुसार व्यक्ति किसी वस्तु का प्रत्यक्षण करते समय उस वस्तु के गठन में प्रयुक्त सभी हिस्सों को एक साथ देखने पर जो विशेषता उभर कर सामने आती है जो कि वस्तु के अन्य सभी हिस्सों की विशेषताओं, गुणों से भिन्न होती है। इस इस प्रकार समझा जा सकता है, व्यक्ति जब किसी दूसरे व्यक्ति के चेहरे को देखता है, तो उसके ऑख, नाक, कान, भौंहें आदि जो भी चेहरे के हिस्से हैं को अलग-अलग नहीं देखता है बल्कि इनके आपस में जुड़े होने से जो एक विशेष गुण उभर कर चेहरे के रूप में बनता है उसे ही देखता है। हालॉंकि चेहरे के अन्य हिस्सों के अपने अपने विशिष्ट गुण होते हैं परन्तु इन सभी के मिलने से उभरा विशेष गुण इन सभी के गुणों से भिन्न होता है।
2. **प्रत्यक्षणात्मक संगठन के आधार भूत तथ्य या नियम(principles of perceptual organisation)-**गेस्टाल्वादी उपागम को मानने वाले विद्वानों के अनुसार प्रत्यक्षण के प्रक्रिया में व्यक्ति जिस वस्तु का प्रत्यक्षण कर रहा होता है उस वस्तु के एक खास-पैटर्न को खोज लेता है। दूसरे शब्दों में वह उस खास पैटर्न के रूप में वस्तु को व्यवस्थित, संगठित पाता है। जब व्यक्ति उद्दीपकों को एक पैटर्न में व्यवस्थित देखता है, तो इसका गुण उन गुणों से भिन्न होता है जिसकी जानकारी उसके हिस्सों के विश्लेषण से प्राप्त होती है। प्रत्यक्षणात्मक संगठन दो तरह के नियमों पर आधारित होता है। 1. परिधीय नियम तथा 2. केन्द्रीय नियम। परिधीय नियम में उन नियमों को रखा जाता है जो कि उद्दीपक से संबंधित होते हैं जैसे कि उद्दीपकों के विभिन्न अंगों या हिस्सों में सन्निकटता, समानता, निरन्तरता, सुन्दर आकृति, गैप आदि कुछ गुण ऐसे होते हैं जिनसे प्रत्यक्षण में संगठन उत्पन्न होता है। उद्दीपकों के इन गुणों से संबंधित सभी नियम जन्मजात होते हैं। केन्द्रीय नियम में अभिप्रेरण, मनोवृत्ति आदि आते हैं। इन नियमों का उपयोग करना व्यक्ति अनुभव से सीखता है। गेस्टाल्टवादियों ने मुख्य रूप से परिधीय नियमों पर ही अधिक जोर दिया है।
3. **समाकृतिकता का आधारभूत नियम(Principle of isomorphism) -**इस नियम के अनुसार व्यक्ति जिस वस्तु अथवा घटना का प्रत्यक्षण करता है, उससे मस्तिष्क के संबंधित हिस्से में भी कुछ विशिष्ट परिवर्तन होते हैं अर्थात् प्रत्यक्षण के दौरान मस्तिष्क में होने वाले परिवर्तनों एवं वस्तु या घटना के बीच एक

सीधा एवं स्पष्ट संबंध होता है। इस नियम को प्रमाणित करने हेतु कोहलर ने हेल्ड नामक मनोवैज्ञानिक के साथ सन् 1949 में एक प्रयोग किया। इस प्रयोग के अन्तर्गत उन्होंने प्रयोज्य के मस्तिष्क के दृष्टि क्षेत्र (विजुअल एरिया) से ई. ई. जी. (इलेक्ट्रोइन्सेफेलोग्राम) यानि मस्तिष्क तरंगों की रिकार्डिंग की। इस प्रयोग में पाया गया कि जब प्रयोज्य के सम्मुख रखी गयी वस्तु जिसका की वह उस समय प्रत्यक्षण कर रहा था, में गति उत्पन्न की गयी तो इससे मस्तिष्कीय तरंगों में भी कुछ परिवर्तन आ गए। इससे ये साबित हो गया कि वस्तु एवं एवं मस्तिष्क के संबंधित हिस्से में हुए परिवर्तन का सीधा संबंध होता है।

5) प्रत्यक्षण का व्यवहारवादी उपागम (behaviouristic approach) -

व्यवहारवादियों के अनुसार प्रत्यक्षण पूर्णरूपेण एक सीखा गया व्यवहार होता है और जिन नियमों एवं सिद्धान्तों द्वारा अन्य व्यवहार निर्धारित होते हैं ठीक उन्हीं नियमों एवं सिद्धान्तों द्वारा प्रत्यक्षण भी निर्धारित होता है। व्यवहारवादियों में सर्वाधिक सफल व्याख्या वैज्ञानिक हल द्वारा सन् 1943 में की गयी है। जिस तरह से किसी सीखे गये व्यवहार का निर्धारण आदत, सामान्यीकरण तथा सीखने में अवरोध आदि नियमों द्वारा होता है उसी तरह से प्रत्यक्षण भी इन्हीं नियमों से निर्धारित होता है। हल के अनुसार नर्वस सिस्टम में संवेदी तंत्रिका आवेग आपस में अनुक्रिया करते हैं एवं इससे नर्वस सिस्टम में इन संवेदी तंत्रिका आवेगों द्वारा व्यक्तिगत रूप से उत्पन्न किये जा रहे परिवर्तनों से भिन्न परिवर्तन उत्पन्न होने लगते हैं। उदाहरण के लिए यदि धूसर रंग के कागज के टुकड़े को बैगनी रंग के बड़े कागज के टुकड़े के बीच में रखा जाता है तो विजुअल सिस्टम धूसर कागज से उत्पन्न संवेदी तन्त्रिका आवेग बैंगनी रंग के कागज से उत्पन्न संवेदी तंत्रिका आवेग के साथ अंतःक्रिया कर दोनों तरह के संवेदी आवेगों को परिवर्तित कर एक नया रूप देता है जिसके परिणामस्वरूप धूसर रंग के कागज का टुकड़ा कुछ पीलापन लिए दिखाई पड़ता है।

6) **निर्देश अवस्था सिद्धान्त(Directive-state theory) –**

इस सिद्धान्त के विकास में ब्रुनर, आलपोर्ट, शेफर तथा मर्फी नामक वैज्ञानिकों को महत्वपूर्ण योगदान है। इस सिद्धान्त का विकास गेस्टाल्टवादियों द्वारा प्रत्यक्षण में व्यक्तिगत कारकों को महत्व न दिये जाने के कारण भूल सुधार के रूप में हुआ। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत व्यवहारपरक कारकों एवं अभिप्रेरणात्मक कारकों को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। इस हेतु कई विशेष परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया है जिनके द्वारा इस सिद्धान्त की व्याख्या की जाती है। इनका वर्णन निम्नांकित है-

प्रथम परिकल्पना - प्रत्यक्षण व्यक्ति की शारीरिक आवश्यकताओं द्वारा निर्धारित होता है। इस परिकल्पना के अनुसार व्यक्ति की शारीरिक आवश्यकताएँ प्रत्यक्षण में विकृति अथवा त्रुटि उत्पन्न कर देती हैं। उदाहरणार्थ - ऑसगुड (1953) नामक मनोवैज्ञानिक ने अपनी पुस्तक में अपने एक अनुभव का वर्णन किया है जिसके द्वारा इस परिकल्पना की पुष्टि होती है। वे लिखते हैं कि जब वे अपने ऑफिस से दोपहर में भोजन करने के लिए जाते थे तो रास्ते में एक दफ्तर मिलता था जिसका नाम '400D' था जिसे वे प्रायः 'FOOD' पढ़ा करते थे।

इसे उदाहरण से स्पष्ट होता है कि ऑसगुड की भूख मिटाने की आवश्यकता उनक प्रत्यक्षण में त्रुटि पैदा कर देती थी।

द्वितीय परिकल्पना - वस्तु प्रत्यक्षण से संबंधित पुरस्कार एवं दण्ड से प्रत्यक्षण की प्रक्रिया का निर्धारण होता है। इस परिकल्पना के अनुसार जब किसी वस्तु के प्रत्यक्षण से व्यक्ति को पुरस्कार स्वरूप सुख की अनुभूति होती है तो उस वस्तु का प्रत्यक्षण किसी ऐसी वस्तु जिसके की प्रत्यक्षण के साथ दुख की अनुभूति जुड़ी होती है कि अपेक्षा अधिक स्पष्ट होता है। इस तथ्य की पुष्टि शेफर एवं मर्फी द्वारा 1943 में किए गए एक प्रयोग द्वारा स्पष्ट रूप से होती है।

तृतीय परिकल्पना - जिन वस्तुओं के लिए व्यक्ति के व्यक्तित्व में कुछ विशेषता मूल्य होता है उन वस्तुओं का प्रत्यक्षण व्यक्ति तेजी से करता है। इस परिकल्पना के अनुसार प्रत्येक जिन वस्तुओं के संबंध में व्यक्ति अभिरूचि रखता है एवं वह उन्हें कुछ मान देता है तो ऐसी वस्तुओं अथवा घटनाओं के प्रत्यक्षण में स्वतः ही तीव्रता एवं स्पष्टता आ जाती है।

चतुर्थ परिकल्पना- यदि किसी वस्तु का मान या मूल्य व्यक्ति के लिये अधिक होता है तो व्यक्ति उसका प्रत्यक्षण अधिक बढ़ा चढ़ा कर करता है।

पांचवी परिकल्पना - व्यक्ति अपने शीलगुणों के अनुरूप वस्तु या उद्दीपक का प्रत्यक्षण करता है। प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न-भिन्न प्रकार के शीलगुण होते हैं और जब वह किसी वस्तु या उद्दीपक का प्रत्यक्षण करता है तो इन शीलगुणों का उस पर काफी प्रभाव पड़ता है। आलपोर्ट के अनुसार बहिर्मुखता तथा अंतमुर्खता का शीलगुण अधिक होने पर व्यक्ति को यदि स्याही-धब्बा परीक्षण (ink-blot test) के कार्ड दिखलाए जाते हैं तो उसमें वह गति का प्रत्यक्षण अधिक करता है।

छठी परिकल्पना - शाब्दिक उद्दीपक जिनका स्वरूप सांवेगिक एवं धमकाने वाला होता है, का प्रत्यक्षण तटस्थ उद्दीपकों की अपेक्षा व्यक्ति देरी से करता है तथा साथ ही ऐसे शब्द व्यक्ति द्वारा सही-सही पहचाने जाने के पहले ही उनमें सांवेगिक प्रतिक्रिया उत्पन्न कर देता है।

7) कृत्रिम बुद्धि उपागम (Artificial intelligence approach)

कृत्रिम बुद्धि उपागम के अनुसार प्रत्यक्षण के सम्पूर्ण सिद्धान्त में मूलतः तीन स्तर होते हैं-

1. प्रत्यक्षणात्मक प्रक्रियाओं के दैहिक प्रक्रम (फिजियोलॉजिकल मेकेनिज्म ऑफ परेम्चुअल प्रोसेसेस)
2. ऐसे नियम जो कि प्रक्रियाओं को विशिष्टता प्रदान करते हैं।
3. तथा प्रत्यक्षण का कार्य या उन दैहिक गुणों का विश्लेषण जो उद्दीपकों तक पहुँचने में मदद करता है।

प्रत्यक्षण के ये तीनों स्तर अभी तक प्रत्यक्षण के एक समन्वित सिद्धान्त के रूप में नहीं रखे जा सके हैं। फिजियोलॉजिस्ट, बायलॉजिस्ट एवं न्यूरोसाइंटिस्ट पहले के स्तर अर्थात् प्रत्यक्षण के फिजियोलॉजिकल मेकेनिज्म पर जोर देते हैं। मनोवैज्ञानिक गिब्सन एवं उनके विचारों के समर्थक प्रत्यक्षण के तीसरे स्तर पर बल

डालते हैं। तथा कृत्रिम बुद्धि उपागम के समर्थकों द्वारा प्रत्यक्षण के संक्रियात्मक नियमों पर अधिक जोर देने को कहते हैं। ऐसे शोध कर्ताओं द्वारा मानव को छोड़कर अन्य जीवों के प्रत्यक्षणात्मक प्रक्रियाओं के अध्ययन में कम्प्यूटर आदि के इस्तेमाल पर बल दिया जाता रहा है। बिनेट्ट (1989) तथा बैंक्स एवं क्राजिसेक (1991) द्वारा किये गये अध्ययनों से यह ज्ञात होता है कि कृत्रिम बुद्धि मॉडल दो प्रकार के विषयों पर मूल रूप से बल डालता है- पहला उन प्रक्रमों पर जिसके सहारे उद्दीपक से संबंद्ध सूचनाओं को प्राप्त किया जाता है तथा दूसरा वे अनुमान एवं निर्णय जिनका उपयोग करके व्यक्ति किसी प्रत्यक्षणात्मक व्याख्या या निष्कर्ष पर पहुँच जाता है।

9.5 प्रत्यक्षण को प्रभावित करने वाले कारक

व्यक्ति द्वारा दिन प्रतिदिन के जीवन में किया जाने वाला विभिन्न वस्तुओं एवं घटनाओं को प्रत्यक्षण में स्पष्टता एवं त्रुटि उत्पन्न होती रहती है। प्रत्यक्षण की इस अव्वल दर्जे की स्पष्टता एवं त्रुटि दोनों ही में कई महत्वपूर्ण कारकों की महती भूमिका अथवा योगदान होता है। प्रत्यक्षण के संबंध में यथोचित जानकारी प्राप्त करने के लिए इन कारकों को अध्ययन आवश्यक होता है। इस क्षेत्र में किए गए अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि प्रत्यक्षण पर व्यक्ति की मानसिक वृत्ति, मनोवृत्ति, अभिप्रेरण तथा सामाजिक सांस्कृतिक कारकों का काफी प्रभाव पड़ता है। इन सभी तरह के कारकों को निम्नांकित तीन मुख्य भागों में बॉटकर अध्ययन किया जा सकता है-

(i) प्रत्यक्षण में व्यक्तिगत कारकों की भूमिका

(ii) प्रत्यक्षण में सामाजिक कारकों की भूमिका

(iii) प्रत्यक्षण में सांस्कृतिक कारकों की भूमिका

(i) प्रत्यक्षण में व्यक्तिगत कारकों की भूमिका -

मनोवैज्ञानिकों ने अपने शोध अनुसन्धानों के निष्कर्षों में पाया है कि प्रत्यक्षण में प्रत्यक्षण करने वाले व्यक्ति के व्यक्तिगत कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ये कारक प्रत्यक्षण को बहुत तरीकों से प्रभावित करते हैं। इन कारकों में निम्न कारक अति महत्वपूर्ण हैं - प्रत्यक्षण कर्ता की शारीरिक एवं मानसिक आवश्यकता, प्रत्यक्षण कर्ता के लिए प्रत्यक्षित किए जा रहे उद्दीपक का मूल्य, प्रत्यक्षण कर्ता के मूल्य, प्रत्यक्षण कर्ता के व्यक्तित्व के शीलगुण, मानसिक वृत्ति, उद्दीपक का प्रत्यक्षणकर्ता के लिए प्रतीकात्मक अर्थ।

प्रत्यक्षणकर्ता की शारीरिक एवं मानसिक आवश्यकता - व्यक्ति की शारीरिक आवश्यकताओं में भूख, प्यास, नींद आदि प्रमुख हैं। इसके साथ ही उसमें मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ भी होती हैं जैसे कि संबंधन की आवश्यकता, अनुमोदन की आवश्यकता, प्रेम की आवश्यकता, शक्ति की आवश्यकता आदि। इन आवश्यकता कारकों का प्रत्यक्षण पर सीधा प्रभाव पड़ता है। इस संदर्भ में लेवाइन, चिन एवं मर्फी द्वारा सन् 1942 में किया गया प्रयोग उल्लेखनीय है। इस अध्ययन में छात्रों के दो समूह विनिर्मित किए गए थे। एक प्रयोगात्मक समूह एवं दूसरा नियंत्रित समूह। प्रयोगात्मक समूह के छात्रों भूखा रख कर उनमें भूख की आवश्यकता उत्पन्न की गयी एवं

नियंत्रित समूह के विद्यार्थियों को भरपेट भोजन कराकर उन की भूख की आवश्यकता को समाप्त कर दिया गया। इसके बाद एक दर्पण में उन्हें कुछ धुंधले चित्रों को दिखलाया गया जिन्में दिखलाई पड़ने वाली चीजें स्पष्ट नहीं थीं। दोनों समूहों के विद्यार्थियों को निर्देश दिया गया कि वे चित्र में दिखाई पड़ने वाली वस्तुओं के बारे में बताएं। परिणाम में पाया गया कि प्रयोगात्मक समूह के विद्यार्थियों ने नियंत्रित समूह के विद्यार्थियों की अपेक्षा खाने पीने की वस्तुओं के बारे में अधिक बताया। इस प्रयोग के निष्कर्ष में कहा गया कि व्यक्ति की शारीरिक आवश्यकता प्रत्यक्षण के दौरान आवश्यकता विशेष के सन्दर्भ में ही सोचने हेतु व्यक्ति को अभिप्रेरित करती है जिसकी वजह से उसमे प्रत्यक्षण में उसकी आवश्यकता परिलक्षित होने लगती है।

इसी तरह के परिणाम मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं के संदर्भ में भी प्राप्त हुए हैं। इस संदर्भ में मैक्लिलैण्ड एवं लिबरमैन द्वारा सन् 1949 में किया गया अध्ययन उल्लेखनीय है। इन वैज्ञानिकों ने उपलब्धि आवश्यकता को अपने अध्ययन की मुख्य विषयवस्तु बनाया। उन्होंने इस हेतु उपलब्धि आवश्यकता की दो श्रेणियों को निर्धारित किया। अधिक उपलब्धि अभिप्रेरक वाला समूह तथा कम उपलब्धि अभिप्रेरक वाला समूह। इन दोनों ही समूहों को तीस शब्द टैचिस्टोस्कोप की सहायता से दिखलाये गये । इन तीस शब्दों में दस शब्द अधिक उपलब्धि से संबंधित थे तथा 20 अन्य शब्द कम उपलब्धि वाले अभिप्रेरक से संबंधित थे। परिणाम में पाया गया कि अधिक उपलब्धि अभिप्रेरक वाले समूह के सदस्यों में उपलब्धि अभिप्रेरक से संबंधित शब्दों को प्रत्यक्षण तटस्थ शब्दों की अपेक्षा निम्नस्तरीय प्रत्यक्षणात्मक देहली पर कर लिए गए तथा कम उपलब्धि अभिप्रेरक वाले समूह के प्रतिभागियों द्वारा उपलब्धि अभिप्रेरक से संबंधित शब्दों का प्रत्यक्षण तटस्थ शब्दों की अपेक्षा उच्चतर प्रत्यक्षणात्मक देहली पर किया गया। इस अध्ययन के परिणाम स्वरूप यह स्पष्ट हो गया कि व्यक्ति के प्रत्यक्षण पर उसकी मनोवैज्ञानिक आवश्यकता उपलब्धि अभिप्रेरक का प्रभाव पड़ता है। उपर्युक्त सभी प्रयोगों के परिणाम का निष्कर्ष यही है कि आवश्यकता चाहे वह शारीरिक हो या मनोवैज्ञानिक, व्यक्ति के प्रत्यक्षण को प्रभावित करता है।

प्रत्यक्षण कर्ता के लिए प्रत्यक्षित किए जा रहे उद्दीपक का मूल्य- प्रत्यक्षण पर इस बात का भी प्रभाव पड़ता है कि व्यक्ति के लिए वस्तुओं या उद्दीपकों का मूल्य कितना है। मनोवैज्ञानिकों द्वारा किए गये अध्यनों से यह स्पष्ट हुआ है कि जिस वस्तु का मूल्य प्रत्यक्षणकर्ता के लिए अधिक होता है उसका आकार उसे बड़ा मालूम होता है। ब्रूनर एवं गुडमैन ने 1947 में इस संबंध में एक अध्ययन किया। इसके अन्तर्गत उन्होंने 10 बच्चों के दो समूह लिए। एक समूह में सभी धनी परिवार के बच्चे थे तथा दूसरे समूह में सभी गरीब परिवार के बच्चे थे। इन दोनों समूह के बच्चों को 1, 5, 10, 20, 25 तथा 50 सेन्ट के सिक्के के आकार का आकलन एक प्रकाश प्रोजेक्टर द्वारा करने को कहा गया। प्रकाश प्रोजेक्टर द्वारा परदे पर सिक्के के आकार की गोल रोशनी पड़ती थी जिसे प्रयोज्य आवश्यकता पड़ने पर प्रोजेक्टर के हैंडिल को घुमाकर छोटा या बड़ा कर लेता था। परिणाम में देखा गया कि गरीब परिवार के सभी बच्चों ने सभी प्रकार के सिक्कों के आकार को वास्तविक आकार से अधिक

बड़ा बतलाया। जबकि धनी परिवार के बच्चों ने इन सिक्कों के आकार को वास्तविक आकार से छोटा बतलाया। शोध कर्ताओं के अनुसार ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि धनी परिवार के बच्चों के लिए सिक्कों का मान कम था जबकि गरीब परिवार के बच्चों के लिए इन सिक्कों का मान अधिक था।

प्रत्यक्षण पर मानसिक वृत्ति का प्रभाव - प्रत्यक्षण पर प्रत्यक्षणकर्ता के मानसिक वृत्ति का भी प्रभाव पड़ता है। मानसिक वृत्ति से तात्पर्य एक विशेष तरह की मानसिक तत्परता से होता है। प्रयोज्यां मे विशेष शाब्दिक निर्देश देकर मानसिक तत्परता उत्पन्न की जाती है या फिर गत अनुभूतियों से उत्पन्न प्रत्याशाओं से प्रयोज्यों में वृत्ति उत्पन्न हो सकती है। कई ऐसे शोध किए गए हैं जिनमें शाब्दिक निर्देश देकर प्रयोज्यों में एक तरह की मानसिक वृत्ति उत्पन्न की गयी हैं और उससे प्रत्यक्षण सीधे प्रभावित होता पाया गया है। इस संदर्भ में स्ट्रीट द्वारा सन् 1931 में किया गया अध्ययन उल्लेखनीय है। इस अध्ययन के अन्तर्गत स्ट्रीट ने प्रयोज्यों को एक अस्पष्ट छपाई वाली तस्वीर दिखलाई जो कि एक प्रकार से बहुत से धब्बों से बनी हुई थी। इस तस्वीर में किसी प्रकार की विशेष वस्तु सीधे तौर पर दिखाई नहीं पड़ती थी। प्रयोज्यों को निर्देश दिया गया कि आपको ऐसी तस्वीर दिखलाई जा रही है जिसमें ऐसे दृश्य हैं जिन्हें आपने घोड़ों की रेस के दौरान देखा होगा। इस निर्देश से प्रयोज्यों में एक विशेष मानसिक वृत्ति उत्पन्न हो गयी जिसके कारण उन्होंने अस्पष्ट चित्र में घोड़े पर सवार एक व्यक्ति का प्रत्यक्षण किया। इस प्रयोग से यह स्पष्ट होता है कि प्रत्यक्षण के दौरान व्यक्ति में उत्पन्न की गई विशेष प्रकार की मानसिक वृत्ति का उसके प्रत्यक्षण पर प्रभाव पड़ता है।

उद्दीपक का प्रत्यक्षणकर्ता के लिए प्रतीकात्मक अर्थ - हमारे सम्पर्क में आने वाली बहुत प्रकार की वस्तुओं एवं उद्दीपकों में से कुछ वस्तुओं एवं उद्दीपकों का हमारे लिए प्रतीकात्मक अर्थ होता है। अर्थात् इन कुछ वस्तुओं को हम किसी विशेष अर्थ, भाव अथवा विचार आदि के प्रतीक के रूप में देखते हैं। सारांशतः कुछ वस्तुओं का व्यक्ति के लिए अप्रकट अर्थ होता है, जिनका स्वरूप व्यक्तिगत तथा प्रतीकात्मक होता है। वस्तुओं के प्रतीकात्मक अर्थ व्यक्ति के लिए सामान्य अर्थ से हटकर कुछ दूसरे अर्थ की ओर इशारा करते हैं। वस्तुओं का यह प्रतीकात्मक अर्थ व्यक्ति के लिए सकारात्मक महत्व या नकारात्मक महत्व भी रख सकता है और इससे व्यक्ति का प्रत्यक्षण काफी हद तक प्रभावित होता है। इसकी पुष्टि पोस्टमैन एवं ब्रूनर द्वारा सन् 1948 में किए गए प्रयोग से होती है। इस प्रयोग में तीन तरह के चिह्नों (डॉलर, स्वस्तिक, एवं ज्यामितिक आकृति) का उपयोग किया गया। इसके लिए अमेरिकन नागरिकों का प्रयोज्यों के रूप में चयन किया गया। इन चिह्नों का अमेरिकन प्रयोज्यों के लिए अलग-अलग प्रतीकात्मक अर्थ था। डॉलर अमेरिका की मुद्रा है एवं विश्व में इसे अत्यधिक सम्मान प्राप्त है, अतएव इसका उनके लिए धनात्मक मूल्य था। स्वस्तिक का संबंध हिटलर द्वारा द्वितीय विश्व युद्ध के समय प्रयुक्त राष्ट्रीय चिह्न से होने एवं हिटलर द्वारा अमेरिका से घृणा किये जाने के कारण सभी अमेरिकी उससे घृणा करते हैं अतः इस चिह्न का भी उसके लिए नकारात्मक मूल्य है। वहीं ज्यामितिक आकृति का मूल्य न तो धनात्मक है और न ही नकारात्मक। अतः इनका तटस्थ मूल्य है। सभी प्रतीक चिह्न समान आकार के थे। इन

प्रयोज्यों को निर्देश दिया गया कि वे इन प्रतीक चिह्नों को प्रोजेक्टर की सहायता से परदे पर बनायें। परिणाम में पाया गया कि प्रयोज्यों ने तटस्थ मूल्य वाली ज्यामितिक आकृतियों की तुलना में डॉलर एवं स्वस्तिक दोनों के वास्तविक आकार से बड़ा आकार पर्दे पर बनाया अर्थात् उन्होंने इन दोनों चिह्नों का आकृतियों की तुलना में अतिआकलन किया। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उद्दीपक के सांकेतिक मूल्य का व्यक्ति के प्रत्यक्षण पर विशेष प्रभाव पड़ता है।

(ii) प्रत्यक्षण में सामाजिक कारकों की भूमिका -

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अतः, उसके प्रत्यक्षण पर भी सामाजिक वातावरण से प्राप्त अनुभवों का प्रभाव पड़ता है।

यहाँ निम्नलिखित कारकों की चर्चा करना आवश्यक है-

(क) **सामाजिक आदर्श-**

सामाजिक आदर्श प्रत्यक्षण का निर्धारक है। हम किसी वस्तु, व्यक्ति या घटना का प्रत्यक्षण सामाजिक आदर्श के संदर्भ में करते हैं, जैसे-संख्या 13 को कुछ देशों में अशुभ संख्या माना जाता है, इसलिए उन देशों में इसका प्रत्यक्षण किसी अप्रिय या अशुभ घटना के संकेत के रूप में किया जाता है। प्रायः माता-पिता के चेहरे की बनावट और बच्चों के चेहरे की बनावट में कुछ समानता देखी जाती है, लेकिन 'ट्रोब्रियांडर' प्रजाति के लोगों में बच्चों और माता-पिता के चेहरे में समानता रहते हुए भी समानता का अनुभव नहीं होता। मलिनोवस्क्ी ने इसकी व्याख्या करते हुए यह बताया है कि ट्रोब्रियांडर प्रजाति के लोगों में बच्चों और माता-पिता में समानता दिखाई पड़ना बुरा माना जाता है, इसलिए उन्हें समानता दिखाई नहीं पड़ती। अस्तु, स्पष्ट है कि सामाजिक नियम, आदर्श, रीति-रिवाज या परंपरा प्रत्यक्षण की क्रिया को प्रभावित करते हैं।

(ख) **सामाजिक मनोवृत्ति-**

सामाजिक मनोवृत्ति भी प्रत्यक्षण को निर्धारित करती है। जिल्लिंग ने एक स्कूल के प्रिय और अप्रिय छात्रों पर एक अध्ययन किया है। इन्होंने इन दोनों समूह के बालकों को अलग-अलग कुछ लिखने को कहा। इन्होंने प्रिय समूह के बालकों को जान-बूझकर गलत लिखने का निर्देश दिया, जबकि अप्रिय समूह के बालकों को सही लिखने का निर्देश। बाद में जब सामान्य लोगों से प्रिय और अप्रिय समूह के छात्रों के काम के विषय में राय ली तो तब देखा गया कि अधिकतर लोगों ने प्रिंय समूह के छात्रों के काम को अच्छा और अप्रिय समूह के छात्रों के काम को खराब बताया। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रिय छात्रों के प्रति सामान्य लोगों की मनोवृत्ति चूँकि अनुकूल थी इसलिए उन्होंने प्रिय छात्रों के कार्य संपादन का प्रत्यक्षण अच्दे निष्पादन के रूप में तथा अप्रिय छात्रों के प्रति प्रतिकूल मनोवृत्ति के कारण उनके कार्यसंपादन का प्रत्यक्षण खराब निष्पादनके रूप में किया।

हम अपने सामान्य जीवन में भी सामाजिक मनोवृत्ति, पूर्वाग्रह आदि का महत्व प्रत्यक्षण में देखते हैं। पूर्वाग्रह के फलस्वरूप ही बुरा कार्य करने वाला भी अच्छा दिखाई पड़ता है और अच्छा कार्य करने वाला भी

बुरा दिखाई देता है। जैसे- मान लें, 'क' नाम का कोई व्यक्ति गर्मी के मौसम में भूखा रहने और धूप लगने के कारण अचेतावस्था में सड़क के किनारे लेटा हुआ हैं उसके पास से उसका कोइ्र परिचित मित्र 'ख' गुजरता है तथा उस लेटे हुए व्यक्ति को देखता है। लेकिन, पहले से वह जानता है कि लेटा हुआ व्यक्ति शराब के नशे में प्रायः इसी तरह जहाँ-तहाँ पड़ा हुआ रहता है। इस पूर्वाग्रह के आलोक में वह वर्तमान में भी यह अनुभव करता है कि उसने शराब पी रखी है और उसी नशे में लेटा हुआ है।

(iii) प्रत्यक्षण में सांस्कृतिक कारकों की भूमिका -

संस्कृति का भी महत्वपूर्ण प्रभाव प्रत्यक्षण पर पड़ता है। इसका सबसे सुंदर उदाहरण हमें आदिम जातियों के लोगों में मिलता है। आदिम जाति के लोगों में एक अद्भुत शक्ति पाई जाती है। इस शक्ति के कारण वे जंगल के बहुत दूर के भाग में भी किसी जानवर को देख लेते हैं। इतनी दूरी पर उपस्थित जानवरों को देखने और पहचानने की इतनी तीक्ष्ण क्षमता अन्य विकसित सभ्यतावाले संस्कृति के लोगों में प्रायः नहीं पाई जाती। यह अंतर आदिम जाति एवं आधुनिक विकसित समाज की संस्कृति में अंतर होने के कारण पाया जाता है।

समाज द्वारा अवरूद्ध या प्रतिबंधिक कृत्यों के प्रति हमारी प्रतिक्रियाओं से भी प्रत्यक्षण पर संस्कृति के प्रभाव का स्पष्ट संकेत मिलता है। प्रत्यक्षात्मक सुरक्षा के संदर्भ में ऐसे प्रयोगों की चर्चा की गई है जिनसे यह सिद्ध हुआ कि समाज या संस्कृति द्वारा वर्जित क्रियाओं से संबंधित शब्दों का प्रत्यक्षण सुखद एवं तटस्थ शब्दों की अपेक्षा विलंब से होता है। अतः, स्पष्ट है कि सांस्कृतिक आदर्श, नियम आदि प्रत्यक्षण की क्रिया का निर्देशन करता है और एक विशेष प्रकार की आकृति का रूप देता है। इसीलिए, हमें वस्तु, व्यक्ति या परिस्थिति का प्रत्यक्षण संस्कृति के आधार पर ही होता है।

9.6 आकृति एवं पृष्ठभूमि प्रत्यक्षण

गेस्टाल्ट सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति किसी वस्तु का प्रत्यक्षण अलग-अलग रूप में न कर सम्पूर्ण रूप से करता है। इस सम्पूर्णता में घटित होने वाले प्रत्यक्षण का अपनी एक विशेषता होती है। इस विशेषता के अनुसार व्यक्ति किसी वस्तु का प्रत्यक्षण करते समय उस वस्तु के गठन में प्रयुक्त सभी हिस्सों को एक साथ देखने पर जो विशेषता उभर कर सामने आती है जो कि वस्तु के अन्य सभी हिस्सों की विशेषताओं, गुणों से भिन्न होती है। इस इस प्रकार समझा जा सकता है, व्यक्ति जब किसी दूसरे व्यक्ति के चेहरे को देखता है, तो उसके ऑख, नाक, कान, भौंहें आदि जो भी चेहरे के हिस्से हैं को अलग-अलग नहीं देखता है बल्कि इनके आपस में जुड़े होने से जो एक विशेष गुण उभर कर चेहरे के रूप में बनता है उसे ही देखता है। हालॉकि चेहरे के अन्य हिस्सों के अपने अपने विशिष्ट गुण होते हैं परन्तु इन सभी के मिलने से उभरा विशेष गुण इन सभी के गुणों से भिन्न होता है।

जब व्यक्ति किसी वस्तु विशेष का प्रत्यक्षण करता है, तो उसे उस वस्तु का कुछ भाग बहुत स्पष्ट दिखाई देता है तथा कुछ भाग तुलनात्मक रूप से कम स्पष्ट दिखाई देता है। ये कम स्पष्ट भाग उस वस्तु के पृष्ठ भाग में

उपस्थित प्रतीत होता है। जो भाग बहुत स्पष्ट होता है उसे आकृति कहा जाता है तथा जो भाग कम स्पष्ट दिखाई पड़ता है उसे पृष्ठभूमि कहा जाता है। इस तरह के प्रत्यक्षण को आकृति-पृष्ठभूमि प्रत्यक्षण कहा जाता है।

आकृति एवं पृष्ठभूमि के बीच अन्तर को गेस्टाल्टवादियों के अनुसार निम्न बिंदुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

(क) आकृति का एक निश्चित आकार-स्वरूप होता है जबकि पृष्ठभूमि आकारहीन होता है। या यदि आकार होता भी है तो उससे किसी प्रकार की आकृति नहीं बनती है।

(ख) पृष्ठभूमि हमेशा आकृति के पीछे होती है और आकृति निश्चित आकार-स्वरूप लिए हुए उसी पृष्ठभूमि पर उभरी हुई दिखाई पड़ती है।

(ग) आकृति का निश्चित आकार-स्वरूप होने के कारण वह अधिक प्रभावपूर्ण तथा स्मरणीय होता है परन्तु पृष्ठभूमि चूँकि अस्पष्ट एवं अनिश्चित आकार का होता है, अतः वह प्रभावहीन होता है तथा उसका विस्मरण भी जल्दी होता है।

(घ) आकृति का स्थान करीब-करीब निश्चित तथा सीमित होता है परन्तु पृष्ठभूमि पीछे की ओर अनन्त फैला होता है।

(ङ) गत्यात्मक रूप से भी आकृति तथा पृष्ठभूमि में अन्तर होता है। इसका मतलब यह हुआ कि एक परिस्थिति में जो वस्तु आकृति के रूप में दिखलाई देती है, थोड़े समय के बाद वही वस्तु फिर पृष्ठभूमि के रूप में दिखलाई देती है और पहले जो पृष्ठभूमि के रूप में दिखलाई दे रही थी वह अब आकृति के रूप में दिखलाई देती है।

पलटावी प्रत्यक्षण (reversible perception) -

ऐसी वस्तुएँ जिनमें गत्यात्मक रूप से आकृति एवं पृष्ठभूमि में अन्तर होता है। अर्थात् एक परिस्थिति में जो वस्तु आकृति के रूप में दिखलाई देती है, कुछ क्षणों उपरान्त पृष्ठभूमि में चली जाती है एवं पूर्व पृष्ठभूमि अब आकृति के रूप में दिखलाई देती है। इस तरह की समस्त वस्तुएँ पलटावी कहलाती हैं एवं इन वस्तुओं का प्रत्यक्षण पलटावी प्रत्यक्षण कहलाता है।

पलटावी प्रत्यक्षण की 'परितृप्ति घटना' (satiation phenomenon) द्वारा व्याख्या- कोहलर एवं वालाक ने परितृप्ति घटना द्वारा पलटावी प्रत्यक्षण की व्याख्या की है। पलटावी प्रत्यक्षण के अध्ययन के दौरान इन वैज्ञानिकों ने पाया कि जब व्यक्ति चित्र में काले हिस्से (यानि आमने-सामने दो व्यक्तियों की आकृतियों पर) कम से कम 35 सेकेण्ड तक देखता रहता है, तो इससे संबंधित मस्तिष्क क्षेत्र पूर्णतः संतृप्त एवं परितृप्त हो जाता है। परिणामस्वरूप, स्वतः चित्र का उजला पक्ष अर्थात् फूलदान की आकृति व्यक्ति व्यक्ति को दिखलाई पड़ने लगती है और फिर इससे संबंधित मस्तिष्क का हिस्सा उत्तेजित होता है तथा फिर धीरे-धीरे परितृप्ति की ओर अग्रसर होने लगता है। परितृप्ति होते ही पुनः स्वतः काली आकृति व्यक्ति के सम्मुख आ जाती है। इसे आकृति अनुप्रभाव (Figural effect) भी कहा जाता है इस तरह के प्रत्यक्षण का स्वरूप मौलिक एवं जन्मजात होता है। गेस्टाल्टवादियों के अनुसार पलटावी आकृति के प्रत्यक्षण से प्रत्यक्षण के बहुस्थिरता नामक विशेष पहलू का भी

पता चलता है। बहुस्थिरता से तात्पर्य इस बात से होता है कि एक ही उद्दीपक को यदि अलग-अलग ढंग से व्यवस्थित किया जाये तो इससे अलग-अलग तरह की आकृति का प्रत्यक्षण होता है। इस तरह का प्रत्यक्षण सिर्फ विजुअल एरिया में ही नहीं बल्कि ऑडिटरी एरिया आदि में भी होता है।

9.7सारांश

प्रत्यक्षण एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों द्वारा वातावरण में उपस्थित वस्तुओं, व्यक्तियों या घटनाओं का ज्ञान प्राप्त करता है। यह ज्ञान तात्कालिक होता है। प्रत्यक्षण को प्रत्यक्षण या प्रत्यक्षण नाम से भी जाना जाता है।

प्रत्यक्षण का गेस्टाल्टवादी सिद्धान्त दृष्टि क्षेत्र की शक्तियों के आधार पर आकार और पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में प्रत्यक्षण की व्याख्या करता है जबकि व्यवहारवादी सिद्धान्त प्रत्यक्षण को सीखा हुआ व्यवहार मानते हैं और इसकी व्याख्या आदत निर्माण अवरोध आदि के आधार पर करते हैं।

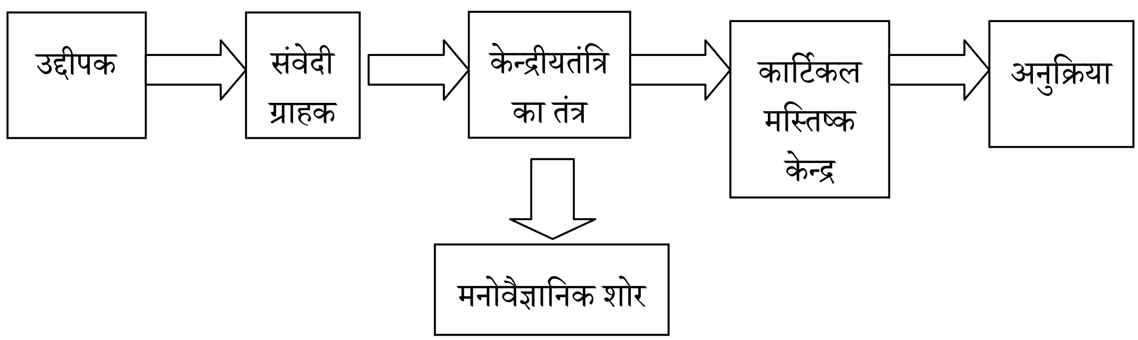

9.8 शब्दावली

- **प्रत्यक्षण:** प्रत्यक्षण एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों द्वारा वातावरण में उपस्थित वस्तुओं अथवा घटनाओं का ज्ञान प्राप्त करता है।

9.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. जब संवेदना में अर्थ जुड़ जाता है तो उसे .... कहते हैं।
2. प्रत्यक्षण का .... सिद्धान्त इसे एक सीखा हुआ व्यवहार मानता है।
3. दृष्टि क्षेत्र की शक्तियों के आधार पर प्रत्यक्षण की व्याख्या .... सिद्धान्त करता है।

उत्तर: 1) प्रत्यक्षण2) व्यवहारवादी 3) गेस्टाल्टवादी

9.10सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- उच्चतर प्रायोगिक मनोविज्ञान - डा. अरूण कुमार सिंह - मोतीलाल – बनारसीदास
- सामान्य मनोविज्ञान - सिन्हा एवं मिश्रा - भारतीय भवन
- आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान - सुलैमान एवं खान - शुक्ला बुक डिपो, पटना
- एक्सपेरिमेन्टल साइकोलॉजी - कॉलिन्स एवं ड्रेक
- एक्सपेरिमेन्टल साइकोलॉजी – ऑसगुड

9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रत्यक्षण से आप क्या समझते हैं?
2. प्रत्यक्षण के गेस्टाल्टवादी दृष्टिकोण की व्याख्या करें।
3. प्रत्यक्षण के सिद्धान्तों की चर्चा करे।
4. प्रत्यक्षण को प्रभावित करने वाले वैयक्तिक एवं सामाजिक कारकों की विवेचना करें।

इकाई-10 गहराईका प्रत्यक्षण, पैटर्न प्रत्यभिज्ञान, प्रत्यक्षणात्मक स्थिरता- चमकीलापन, आकार एवं रूप (Depth Perception, Pattern Recognition and Perceptual Constancy:- Brightness, Size and Shape)

इकाई संरचना

10.1प्रस्तावना

10.2उद्देश्य

10.3गहराई का प्रत्यक्षण

10.4पैटर्न प्रत्यभिज्ञान

10.5प्रत्यक्षणात्मक स्थिरता

10.6 सारांश

10.7 शब्दावली

10.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

10.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

10.10 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1प्रस्तावना

अभी तक आपने प्रत्यक्षण के स्वरूप, प्रत्यक्षण के विभिन्न सिद्वान्त एवं प्रत्यक्षण को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों के बारे में जानकारी प्राप्त की हैं। इस जानकारी के प्रकाश में विद्यार्थियों के मन में वस्तुओं की गहराई के प्रत्यक्षण से संबंधित कई प्रकार की जिज्ञासायें उत्पन्न होती हैं। इसके अलावा आस पास के वातावरण में उपस्थित विभिन्न उद्दीपक कई बार विशेष प्रकार के उद्दीपक पैटर्न विनिर्मित करते हैं जिनका अर्थ व्यक्ति को वातावरण के साथ सार्थक एवं सही अंतःक्रिया करने के लिए समझना जरूरी होता है। अतः ऐसे प्रश्न भी विद्यार्थी की जिज्ञासा का अंग होते हैं। इसी के साथ विद्यार्थी के मन में विभिन्न वस्तुओं का चमकीलापन, उनका आकार एवं रूप से संबंधित जिज्ञासाओं का उतपन्न होना एक स्वाभाविक घटना है जो सभी विद्यार्थियों के साथ दिन प्रतिदिन के जीवन में सहज ही घटती रहती है। इस इकाई के अन्तर्गत आपकी इन्हीं जिज्ञासाओं से संबंधित प्रश्नों के उत्तरों के बारे में व्यापक जानकारी दी जा रही है।

10.2उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

1. गहराई प्रत्यक्षण को समझ सकेंगे एवं उसका व्यापक वर्णन कर सकेंगे।
2. वस्तुओं के पैटर्न प्रत्यभिज्ञान को समझ सकेंगे।
3. प्रत्यक्षणात्मक स्थिरता की व्यावहारिक जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
4. वस्तुओं के चमकीलापन से संबंधित प्रत्यक्षण की जिज्ञासाओं का समाधान प्राप्त कर सकेंगे।
5. वस्तुओं के आकार एवं रूप में प्रत्यक्षणात्मक स्थिरता को समझ सकेंगे।
6. गहराई प्रत्यक्षण, पैटर्न प्रत्यभिज्ञान एवं प्रत्यक्षणात्मक स्थिरता से संबंधित प्रश्नों के उत्तर सहजता पूर्वक समझ एवं लिख सकेंगे।

10.3गहराई का प्रत्यक्षण

अपने जीवन में हम दिन प्रतिदिन बहुत सी वस्तुओं का प्रत्यक्षण करते रहते हैं। जिन वस्तुओं का हम प्रत्यक्षण करते हैं वे मूलतः त्रिविमीय हो सकती हैं त्रिविमीय से तात्पर्य किसी भी वस्तु में लम्बाई चौड़ाई एवं ऊँचाई से होता है। सामान्य रूप में प्रत्यक्षण की जाने वाली वस्तुएँ किसी भी स्थिति में हो सकती हैं जैसे कि वस्तु व्यक्ति से अधिक ऊँचाई अथवा निचले स्थान पर अवस्थित हो सकती है, वस्तु व्यक्ति के बॉयी ओर अथवा दायीं स्थित हो सकती है। पास या नजदीक हो सकती है। वस्तु व्यक्ति के चाहे पास हो अथवा दूर, बायीं ओर हो या दायीं ओर, ऊपर हो या नीचे, जब उसका प्रतिबिम्ब अक्षिपटल या दृष्टिपटल जिसे अंग्रेजी में रेटीना कहते हैं पर पड़ता है, तो उसमें केवल लम्बाई एवं चौड़ाई होती है। दूसरे शब्दों में रेटीना पर जो प्रतिबिम्ब बनता है उसमें मात्र दो ही विमा होती हैं। एक विमा लम्बाई एवं दूसरी विमा चौड़ाई़ होती है। तीसरी विमा यानी मोटाई नहीं होती है। इस मोटाई का मापन वस्तु की ऊँचाई से किया जाता है। अतः रेटीना पर बने प्रतिबिम्ब किसी कागज के टुकड़े पर बने चित्र के बिलकुल समरूप होते हैं जिसमें केवल लम्बाई तथा चौड़ाई होती है। इस दृष्टि से यदि देखें तो केवल लम्बाई, एवं चौड़ाई के प्रतिबिम्ब की वजह से व्यक्ति को सिर्फ वस्तु की लम्बाई एवं चौड़ाई का ही ज्ञान होना चाहिए था, परन्तु ऐसा व्यवहार में नहीं पाया जाता है। हमें वस्तुओं की मोटाई, सघनता, दूरी एवं गहराई का भी ज्ञान होता है।

अब यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि रेटीना पर बनने वाले द्विविमीय प्रतिबिम्बों से हमें त्रिविमीय प्रत्यक्षण कैसे होता है। इस जिज्ञासा के समाधान हेतु वैज्ञानिकों ने बहुत से शोध एवं अनुसंधान किए। इन अनुसंधानों के प्रकाश में यह स्पष्ट हुआ कि हमें वस्तुओं की मोटाई अथवा गहराई का प्रत्यक्षण कुछ खास-खास संकेतों के आधार पर होता है। ये संकेत दो प्रकार के होते हैं। 1. एक-अक्षीय संकेत (monocular cures) 2. द्वि-अक्षीय संकेत (binocular cues)।

1. एक-अक्षीय संकेत (monocular cures) - एक-अक्षीय संकेत उन संकेतों को कहा जाता है जिन्हें केवल एक ही नेत्र द्वारा ग्रहण किया जा सकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि अगर कोई व्यक्ति किसी बीमारी या दुर्घटना आदि के कारण अपनी एक ऑख खो देता है, तो उस अवस्था में भी उसे बची हुए एक ऑख द्वारा इन

संकेतों के ग्रहण द्वारा वस्तुओं की मोटाई अथवा गहराई का ज्ञान हो सकता है। एक-अक्षीय संकेत को चित्रीय संकेत (Pictorial cues) भी कहा जाता है। एक-अक्षीय संकेत को ग्रहण करने की कला व्यक्ति अपने अनुभव द्वारा सीखता है। यही कारण है कि इसे व्यक्ति की जन्मजात विशेषता नहीं माना जाता है। एक-अक्षीय संकेत दो प्रकार के होते हैं। 1. गतिरहित एक-अक्षीय संकेत 2. गतियुक्त एक-अक्षीय संकेत।

(i) गतिरहित एक-अक्षीय संकेत -इस संकेत का वर्णन निम्न बिन्दुओं को आधार पर किया जाता है-

क) अन्तःस्थिति (interposition)

ख) अक्षिपटलीय प्रतिबिम्ब का आकार (size of retinal image)

ग) रेखीय संदर्श (linear perspctive)

घ) गठन प्रवणता (texture gradient)

च) छाया संकेत (shadow cue)

छ) वायवीय संदर्श (aerial perspective)

ज) सापेक्ष चमकीलापन (relative brightness)

झ) ऊँचाई संकेत (height cue)

क)अन्तःस्थिति (interposition) - जब वस्तुएँ एक सीध में तथा साथ ही साथ अपारदर्शी होती हैं, तो सम्मुख वस्तु पीछे की वस्तु के कुछ हिस्से या भाग को प्रायः छिपा लेती है। इसे ही अन्तः स्थिति अथवा अन्तःक्षेप कहा जाता है। जब ऊपर की वस्तु अपने नीचे की वस्तु को अंशतः छिपा लेती है, तो व्यक्ति को नीचे की वस्तु अधिक गहराई पर मालूम पड़ती है तथा ऊपर ही वस्तु जिसका पूरा भाग वह देख रहा है, काफी नजदीक मालूम पड़ता है।

विशेष बात यह है कि अंतःस्थिति संकेत अथवा अंतःक्षेप संकेत द्वारा वस्तुओं की गहराई का ज्ञान तभी हो सकता है। जब वस्तुए करीब करीब एक सीध में हो तथा उन सभी वस्तुओं में एक दूसरे को ढँकने की क्षमता हो, अर्थात् वे सभी अपारदर्शी हों। इन दशाओं के अभाव में अंतःस्थिति संकेत द्वारा वस्तुओं की गहराई का प्रत्यक्षण नहीं होगा।

ख) अक्षिपटलीय प्रतिबिम्ब का आकार (size of retinal image) - जब कोई वस्तु व्यक्ति के नजदीक होती है, तो अक्षिपटल पर बनने वाले इसके प्रतिबिम्ब का आकार बड़ा होता है। फलस्वरूप वस्तु का आकार भी बड़ा दिखाई देता है। उदाहरणतः यदि हम गैस के उड़ रहे गुब्बारे को ही लें तो हम पाते हैं कि जैसे-जैसे गैस का गुब्बारा हमारे नजदीक आता है वैसे वैसे उसका अक्षिपटलीय प्रतिबिम्ब बड़ा होता जाता है। फलस्वरूप, गैस का गुब्बारा आकार में पहले की अपेक्षा बड़ा दिखलाई पड़ने लगता है। ठीक, उसके विपरीत जैसे-जैसे गैस का गुब्बारा हमसे दूर होता जाता है, उसका अक्षिपटलीय प्रतिबिम्ब छोटा होता जाता है। फलस्वरूप, उस गुब्बारे का

आकार भी छोटा दिखलाई पड़ने लगता है और अत्यधिक दूर चले जाने पर मात्र एक धब्बे के समान दिखलाई देता है और अन्त में वह हमारी नजरों से ओझल हो जाता है।

इटेल्सन एवं किलपैट्रिक का प्रयोग - इटेल्सन एवं किलपैट्रिक द्वारा सन् 1950 में एक प्रयोग किया गया। इस प्रयोग में उन्होंने दो गुब्बारों का उपयोग किया। उन्होंने एक अंधेरे कमरे में समान दूरी पर हवा से भरे दो गुब्बारों को लटका दिया।

ग) रेखीय संदर्श (linear perspctive) - रेखीय संदर्श से तात्पर्य उस घटना से होता है जहॉं समानान्तर रेखाएँ जैसे-जैसे व्यक्ति की नजरों से दूर होती जाती हैं वैसे-वैसे वे आपस में एक दूसरे से सटती नजर आती हैं। इसी प्रकार दूर क्षितिज की ओर जाती हुई दो समानान्तर रेखाएँ क्षितिज की सीमा पर आपस में मिलती हुई प्रतीत होती हैं अर्थात् दोनों रेखाएँ अंत में एक दूसरे के अभिमुख हो जाती हैं। इससे व्यक्ति को दूरी एवं गहराई का प्रत्यक्षण होता है तथा इस संकेत को रेखीय संदर्श कहा जाता है। अपने दैनिक जीवन में इसका उदाहरण हमें रेल की पटरियों को देखने से मिलता है। अगर हम रेल की पटरियों के बीच खड़ा होकर देखें तो हम पाएँगे कि जैसे-जैसे पटरियॉं आगे बढ़ती जाती हैं, वैसे-वैसे एक दूसरे के नजदीक आती हुई मालूम पड़ती हैं। अधिकतम दूरी पर यानि कि क्षितिज पर ऐसा महसूस होता है कि ये दोनों पटरियॉं बिलकुल ही एक दूसरे से सट गयीं।

घ) गठन प्रवणता (texture gradient) - गठन प्रवणता का संकेत एक ऐसा संकेत है जिसमें रेखीय संदर्श एवं आकार दोनों तरह के संकेत सम्मिलित होते हैं। गठन से तात्पर्य वस्तु एवं उसके आकार में क्रमिक परिवर्तन से होता है। मनोवैज्ञानिक गिब्सन द्वारा सन् 1950 में गठन प्रवणता पर किए गए एक प्रयोग द्वारा यह दिखलाया गया है कि जब किसी वस्तु के गठन में सम्मिलित तत्वों का आकार छोटा होता है एवं वे काफी सघन होते हैं तो इससे व्यक्ति को दूरी एवं गहराई का प्रत्यक्षण होता है। परन्तु जब गठन में सम्मिलित सभी तत्वों का आकार एक समान होता है तथा वे सघन नहीं होकर फैले होते हैं, तो इससे वस्तु के तत्वों में आपस में व्यक्ति को दूरी अथवा गहराई का कोई प्रत्यक्षण व्यक्ति को नहीं होता है।

च) छाया संकेत (shadow cue) - छाया को एक प्रमुख एक-अक्षीय संकेत माना गया है जिसके आधार पर हमें गहराई तथा दूरी का प्रत्यक्षण होता है। छाया संकेत की प्रमुख पूर्वकल्पना यह होती है कि रोशनी वस्तु के ऊपर से आ रही है। इस पूर्वकल्पना को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि जब एक वस्तु की छाया दूसरे वस्तु पर पड़ती है, तो देखने वाले व्यक्ति को दूसरे वस्तु की दूरी एवं गहराई की अपेक्षा अधिक मालूम पड़ती है। वास्तविकता यह है कि छाया संकेत द्वारा वस्तुओं की चमक में थोड़ा अन्तर आ जाता है जिससे दूरी एवं गहराई का प्रत्यक्षण होता है।

छ) वायवीय संदर्श (aerial perspective) - वायवीय संदर्श का संबंध रोशनी से है। वायु में जैसे-जैसे रोशनी आगे की ओर बढ़ती है वैसे-वैसे वायु में उपस्थित धूलिकण तथा नमी के कारण रोशनी में अधिक धुंधलापन तथा फैलाव बढ़ जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि वातावरण में उपस्थित दूर की पहाड़ियॉं, घर, पेड़ आदि

काफी धुंधले, अस्पष्ट तथा साथ-ही-साथ बैंगनी रंग जैसे दिखलाई देने लगते हैं। इसे ही वायवीय संदर्श का संकेत कहा जाता है। वातावरण में जो वस्तुएँ, यानि पहाड़ियॉ, घर, पेड़-पौधे, व्यक्ति से नजदीक होते हैं, वे न तो धुंधले, अस्पष्ट और न ही बैंगनी रंग सदृश दिखलाई देते हैं। अतः वस्तु की अस्पष्टता, धुंधलापन, आदि जो वायवीय परिदृश्य के संकेत में सम्मिलित होता है, द्वारा भी हमें दूरी एवं गहराई का प्रत्यक्षण होता है।

ज) सापेक्ष चमकीलापन (relative brightness) - अंधेरे में रखी हुई कई वस्तुओं को जिनके चमकीलेपन का स्तर असमान होता है, जब हम देखते हैं तब हमें अधिक चमकीली वस्तु नजदीक तथा कम चमकीली वस्तु अधिक दूरी पर एवं गहराई पर स्थित दिखलाई देती है।

झ) ऊँचाई संकेत (height cue) - इस संकेत के अनुसार जो वस्तु क्षितिज के नजदीक होती है उसे व्यक्ति तुलनात्मक रूप से अधिक दूरी पर होने का प्रत्यक्षण करता है। जैसे

(ii) कुछ एक-अक्षीय संकेत ऐसे हैं जिनमें गति सम्मिलित होती है ऐसे प्रमुख एक-अक्षीय संकेत निम्नांकित दो प्रकार के हैं- 1. गतिबोधक गहराई संकेत (kinetic depth cue) 2. गति संकेत (motion cue)

क)गतिबोधक गहराई संकेत (kinetic depth cue) - इस संकेत का संबंध वस्तुओं या उद्दीपकों की गति से है न कि प्रत्यक्षणकर्ता की गति से है। कोई वस्तु स्थिरावस्था में होने पर चपटी दिखती है परंतु जब उसमें गति उत्पन्न हो जाती है या वह घूमने लगती है तो उसमें गहराई एवं दूरी का प्रत्यक्षण होने लगता है। इस तथ्य की पुष्टि कई अध्ययनों में की गई जिसमें एक महत्वपूर्ण अध्ययन वालेक एवं ओकोनेल द्वारा सन् 1953 में किया गया। इस अध्ययन में प्रतिभागियों को कुछ ठोस ब्लाक, तार से बनी कुछ आकृतियॉ एवं सीधी छड़ी आदि दिखलाई गयीं। अपनी स्थिरावस्था में ये सभी वस्तुएँ प्रतिभागियों को सपाट एवं चिपटी प्रतीत हुई परन्तु जब उन्हें तेजी से घूमते हुयी स्थिति में दिखलाया गया तो वे त्रिविमीय प्रतीत हुई।

ख)गति संकेत (motion cue) - वस्तुओं में गति का प्रत्यक्षण होने के कारण भी हमें दूरी तथा गहराई का ज्ञान होता है। इस संकेत को गति लम्बन (movement parallax) भी कहा जाता है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण चलती रेलगाड़ी में खिड़की या दरवाजे से बाहर देखने पर मिलता है। चलती रेलगाड़ी से बाहर देखने पर लगता है कि नजदीक के पेड़-पौधे, मकान, व्यक्ति आदि विपरीत दिशा में भागते जा रहे हैं। तथा दूर के पेड़-पौधे, मकान, पहाड़, आदि उसी दिशा में जिसमें कि रेलगाड़ी चल रही है, भागते प्रतीत होते हैं। हालांकि सच्चाई यह होती है कि न तो नजदीक के पेड़-पौधे, मकान पहाड़ आदि भाग रहे हैं या चल रहे हैं और न तो दूर के ही। परन्तु जब व्यक्ति को ऐसा प्रतीत होता है तो इससे उसे वस्तुओं की दूरी तथा नजदीकी का स्पष्ट प्रत्यक्षण होता है।

उपरोक्त वर्णित तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इन एक-अक्षीय संकेतो द्वारा हमें दूरी एवं गहराई के प्रत्यक्षण में काफी मदद मिलती है। सभी एक-अक्षीय संकेतों की एक सामान्य विशेषता या गुण यह है कि व्यक्ति इसे अपने अनुभव द्वारा सीखता है न कि जन्म से ही इन संकेतों का उपयोग करने की क्षमता उसमें मौजूद रहती है।

10.4पैटर्न प्रत्यभिज्ञान

पैटर्न प्रत्यभिज्ञान रोजमर्रा की एक बहुत ही महत्वपूर्ण घटना है जिसके सहारे हम अपने आस-पास की घटनाओं का अर्थ समझते हैं। व्यक्ति को सार्थक ढंग से वातावरण के साथ अंतःक्रिया करने के लिए यह आवश्यक है कि वह उस वातावरण के विभिन्न उद्दीपक पैटर्न की पहचान करे। मैटलिन नामक मनोवैज्ञानिक ने सन 1983 में अपनी पुस्तक 'परसेप्सन' में इसे परिभाषित करते हुए कहा है कि '' पैटर्न प्रत्यभिज्ञान से तात्पर्य संवेदी उद्दीपकों द्वारा की जा रही जटिल व्यवस्थाओं की पहचान कर लेने से होता है ''("Pattern recognition referes to the identification of complex management of sensory stimuli")। इसे उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझा जा सकता है। व्यक्ति 'किताब' शब्द के प्रत्येक अक्षर को देख रहा है और उसकी पहचान कर लेता है। व्यक्ति मैदान में एक गाय देखता है और समझ जाता है कि यह मेरे पड़ोसी की गाय है। इन सभी उदाहरणों में व्यक्ति उद्दीपक के द्वारा अभिव्यक्त एवं प्रदर्शित किये जा रहे एक विशेष पैटर्न को देखता है एवं उस पैटर्न को समझ कर उस उद्दीपक की सही पहचान कर लेता है। उपरोक्त उदाहरणों में किताब एवं गाय उद्दीपक के रूप में लिए गए हैं।

पैटर्न प्रत्यभिज्ञान की व्याख्या करने के लिए दो तरह की प्रक्रियाओं (प्रोसस) से संबंधित मॉडलों का वर्णन मिलता है। 1. बॉटम-अप प्रोसेसिंग (bottom up processing)2. टॉप-डाउन प्रोसेसिंग (top-down processing)।

बॉटम-अप प्रोसेसिंग में उद्दीपकों की व्यक्त विशेषताओं एवं उनसे संबंधित महत्वपूर्ण तथ्यों से शुरूआत करके निष्कर्ष प्राप्ति के ऊँचे स्तर पर पहुँचा जाता है अर्थात निष्कर्ष हेतु आधार बनने वाली जानकारियों का संसाधन किया जाता है, अर्थात इस संसाधन में हम नीचे से शुरूआत कर ऊपर तक पहुँचते हैं। इस स्तर पर उदीपक के अर्थ एवं संदर्भ को समझा जाता है। टॉप-डाउन प्रोसेसिंग में पैटर्न में पहचान में व्यक्ति में पूर्व अनुभूति एवं संदर्भ से विशेष प्रत्याशा उत्पन्न होती है और उसी के आलोक में उद्दीपकों की व्याख्या की जाती है।

बॉटम-अप प्रोसेसिंग मॉडल के तहत दो तरह के सिद्धान्तों को वर्णन किया गया है जो इस प्रकार है-

(अ) विशिष्ट रूपरेखा सिद्धान्त (distinctive features theory)

(ब) मूलप्रति मिलान सिद्धान्त (prototype-matching theory)

(अ) विशिष्ट रूपरेखा सिद्धान्त - इस सिद्धान्त का प्रतिपादन सन् 1975 में मनोवैज्ञानिक गिब्सन द्वारा किया गया वे प्रसिद्ध कार्नेन यूनीवर्सिटी से संबंध रखते थे। उन्होंने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन लोग अक्षरों की पहचान किस तरह से करते हैं इसकी व्याख्या हेतु किया था। इनके अनुसार व्यक्ति अक्षरों की पहचान उनकी विशिष्ट विशेषता या रूपरेखा के आधार पर करता है। प्रत्येक अक्षर की एक विशिष्ट रूपरेखा एवं विशेषता होती है जिसके आधार पर उसकी पहचान संभव होती है। उदाहरण के लिए अंग्रेजी के अक्षर A एवं H को ही लें। अक्षर A में तीन रेखाएँ हैं एवं अक्षर H में भी तीन रेखाएँ हैं परन्तु दोनों की ही रूपरेखा अलग-अलग है। अक्षर A में दो बड़ी रेखाएँ एक बिन्दु पर आपस में मिलती हैं एवं इन दोनों बड़ी रेखाओं को एक छोटी रेखा बीच से जोड़ती है। इस

अक्षर में दोनों बड़ी रेखाओं का मिलन बिन्दु ही इनकी विशिष्ट विशेषता या रूपरेखा है। वहीं अक्षर H में दोनों बड़ी रेखाएँ एक दूसरे के समानान्तर हैं एवं ये प्रत्यक्ष में कहीं नहीं मिलतीं हालॉकि ये बड़ रेखाएँ भी एक छोटी रेखा द्वारा एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि इन दोनों ही अक्षरों में कुछ विशिष्ट विशेषताएँ विद्यमान हैं जिनके द्वारा इनका एक विशेष पैटर्न बनता है जिसके द्वारा इनकी पहचान व व्याख्या संभव होती है। अक्षरों का कुछ समूह तो ऐसा होता है जिनकी विशिष्ट विशेषता या रूपरेखा एक दूसरे से पूर्णतः भिन्न होती है। जैसे O, W, R, G, L, S, D आदि। गिब्सन से सभी अंग्रेजी अक्षरों की विशिष्ट रूपरेखाओं का एक चार्ट बनाया है। इन्होंने कई तरह की विशेषताओं का वर्णन किया है जिसमें तीन विशेषताएँ सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। 1. सीधा (स्ट्रेट), 2. मुड़ा हुआ (कर्व्ड), 3. प्रतिच्छेदन (इन्टरसेक्शन)।

एक प्रश्न सहज ही उठता है कि जब व्यक्ति किसी अक्षर की पहचान कर रहा होता है तो वह किन विशेषताओं पर सर्वाधिक निर्भर करता है? इस प्रश्न का उत्तर गिब्सन, सापिरो एवं योनास ने सन् 1968 में किए गए एक प्रयोग द्वारा दिया है। इस प्रयोग के अन्तर्गत प्रतिभागियों को अक्षरों का एक-एक जोड़ा बारी-बारी से दिखलाया गया। उन्हें निर्देश दिया गया कि जब उन्हें दोनों अक्षर एक समान लगे, तो वे विशेष बटन को दबाकर अपनी अनुक्रिया करेंगे और जब उन्हें महसूस हो कि अक्षरों के जोड़े में दोनों अक्षर एक दूसरे से भिन्न हैं, तो वे दूसरा बटन दबाकर अनुक्रिया करेंगे। इस तरह से प्रयोगकताओं द्वारा प्रत्येक प्रयास में अनुक्रिया करने में लगा समय के आधार पर समानता की माप की गयी। अगर अनुक्रिया करने में समय कम लगता था जैसा कि O एवं W के जोड़े में होता था तो यह समझा जाता था कि दोनों अक्षर एक दूसरे से काफी भिन्न हैं। अगर अन्तर्निहित समय लम्बा होता था जैसा कि P और R के जोड़े में होता था, तो यह समझा जाता था कि अक्षर एक-दूसरे के काफी समान हैं। इस प्रयोग के परिणाम में यह भी पता चला कि प्रतिभागी सबसे पहले उन अक्षरों के बीच अंतर करते हैं जिनकी रूपरेखा में सीधी रेखाओं का इस्तेमाल किया गया होता है जैसे M, W, N आदि। और उसके बाद उन अक्षरों में विभेद करते हैं जिनकी रूपरेखा में घुमाव अथवा मोड़ यानि कर्व ज्यादा होते हैं जैसे,P एवं R। इसके उपरान्त तीसरे स्तर पर वे उन अक्षरों में अन्तर करते हैं जिनकी रूपरेखा में गोलाई जैसे तत्व होते हैं जैसे C, G।

इस सिद्धान्त में व्याप्त बहुत सी अच्छाइयों के बावजूद कुछ मनोवेज्ञानिकों ने इसकी कमियों की ओर ध्यान आकर्षित किया है। इनमें नॉस एवं शिलमैन का नामक प्रमुख है। इन मनोवैज्ञानिकों ने 1976 में एक संप्रत्ययात्मक कठिनाई की ओर मनोवैज्ञानिकों का ध्यान आकृष्ट कराया है। इन्होंने यह बतलाया है कि प्रायः अक्षरों की विशिष्ट विशेषताओं एवं रूपरेखाओं के बीच अन्तर करना संभव नहीं हो पाता है। उदाहरणस्वरूप, यदि व्यक्ति का बिन्दुओं से निर्मित त्रिभुज जिसमें कि प्रत्येक दो बिन्दुओं के बीच कुछ दूरी हो एवं रेखाओं से बना त्रिभुज के बीच अन्तर करने के लिए कहा जाय तो उसे कुठ कठिनाई होगी। तीन बिन्दुओं के घेरे को भी व्यक्ति एक त्रिभुज ही समझता है हालांकि एक त्रिभुज की दो विशिष्ट विशेषताओं की इसमें कमी है - तीन सीधी रेखा

एवं तीन कोण। स्पष्ट हुआ कि कभी-कभी उद्दीपकों की विशिष्ट विशेषताओं में अन्तर होने के बावजूद भी व्यक्ति उन्हें एक समान होने का प्रत्यक्षण करता है और इस तथ्य की व्याख्या इस सिद्धान्त द्वारा नहीं हो पाती है। ऐसी दशा में एक अन्य सिद्धान्त द्वारा इसकी व्याख्या की जाती है। इसका वर्णन नीचे की पंक्तियों में किया गया है।

(ब) मूलप्रति मिलान सिद्धान्त - इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति अपनी स्मृति में उद्दीपकों का एक अमूर्त एवं आदर्श पैटर्न संचित करके रखता है। जब व्यक्ति कोई विशेष वस्तु को देखता है तो वह उसकी तुलना मन में संचित मूलप्रति या आदर्श आकृति से करता है। अगर वह उससे सुमेलित होता है, तो व्यक्ति उस पैटर्न की पहचान कर लेता है। अगर वह सुमलित नहीं होता है तो व्यक्ति उसे अन्य प्रोटोटाइप से एक-एक करके तब तक मिलाते जाता है जब तक कि सही सुमेल न प्राप्त हो जाये। इस सिद्धान्त की मान्यता यह है कि मन में संचित मूलप्रति-प्रोटोटाइप की निम्नांकित तीन विशेषताएँ होती हैं-

1. प्रोटोटाइप अमूर्त होता है।
2. प्रोटोटाइप आदर्शस्वरूप होते हैं।
3. प्रोटोटाइप का आकार दृ्ढ़ रूप से विशिष्ट नहीं होता है।

प्रोटोटाइप-मिलान सिद्धान्त विशिष्ट रूपरेखा सिद्धान्त से किस तरह भिन्न है? इन दोनों सिद्धान्तों में सबसे प्रमुख अंतर यह है कि प्रोटोटाइप सिद्धान्त में उद्दीपक के सम्पूर्ण आकारों के महत्व पर बल डाला जाता है जबकि विशिष्ट रूपरेखा सिद्धान्त यह बतलाता है कि उद्दीपक के विशिष्ट महत्वपूर्ण भाग की पहचान करने के बाद ही पैटर्न प्रत्यभिज्ञान होता है। इस तरह से विशिष्ट रूपरेखा सिद्धान्त के अनुसार स्मृति में संचित पैटर्न दृ्ढ़ रूप से आकार में विशिष्ट होता है जबकि मूलप्रति मिलान सिद्धान्त के अनुसार ऐसे संचित पैटर्न में लचीलापन का गुण होता है। इस लचीलेपन के विचार को एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझाया जा सकता है। व्यक्ति वैसे अक्षर को भी अपने वास्तविक स्वरूप में पहचान लेता है जिसकी आकृति विकृत होती है। चित्र में अक्षरों को हम W (डबल्यू) के रूप में आसानी से पहचान कर लेते हैं हालॉंकि उनकी वास्तविक आकृति विकृत है। ऐसा इसलिए संभव हो पाता है कि अक्षर W की एक मूलप्रति (प्रोटोटाइप) व्यक्ति के मन में होता है।

टॉप-डाउन प्रोसेसिंग (top-down processing) मॉडल - इस मॉडल के के द्वारा पैटर्न पहचान की व्याख्या में वस्तु के संदर्भ पर विशेष बल डाला जाता है। इसमें उद्दीपकों की व्याख्या व्यक्ति के पूर्व ज्ञान एवं उदीपक के संदर्भ संबंध में की जाती है। पैटर्न पहचान पर संदर्भ के पड़ने वाले प्रभाव को निम्न चित्र में दिखलाया गया है।

A, I3, C, D, E

I0, II, I2, I3, I4

इस चित्र में अक्षर 'बी' तथा अंक तेरह एक ही समान लिखें गए हैं परन्तु जब उसे अक्षरों के समूह के संदर्भ में उपस्थित किया गया तो उसे अक्षर बी के रूप में पढ़ा जाता है परंतु जब उसे अंकों के समूह के संदर्भ मं उपस्थित किया जाता है, तो उसे अंक तेरह के रूप में पढ़ा जाता है।

10.5प्रत्यक्षणात्मक स्थिरता

हम सभी को अपने दिन प्रतिदिन के जीवन में प्रत्यक्षण से संबंधित एक विशेष अनुभव अवश्य ही होता है, जिसकी व्याख्या प्रत्यक्षणात्मक स्थिरता के रूप में की जाती है। प्रत्यक्षण का एक विशेष गुण यह है कि इसके द्वारा हमें वातावरण में उपस्थित वस्तुओं का ज्ञान उनकी भौतिक परिस्थितियों में परिवर्तन के बावजूद भी समान रूप से होता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि वस्तुओं या उद्दीपकों की भौतिक परिस्थितियों में यद्यपि परिवर्तन हो जाता है, तथापि उसके प्रत्यक्षण में कोई परिवर्तन न होकर स्थिरता बनी रहती है। इसे ही प्रत्यक्षणात्मक स्थिरता कहा जाता है।

परिभाषा :

''अलग-अलग परिस्थितियों में उद्दीपक वस्तुओं को करीब-करीब समरूप ढंग से प्रत्यक्षण करने की प्रवृत्ति को प्रत्यक्षणात्मक स्थिरता कहा जाता है।''

'Perceptual constancy ...is the tendency of a stimulus situation to be perceived in approximately the same way under varying circumstances.' (Sartain, North, Strange & Chapman: Psychology, 1973. p.222)

प्रत्यक्षणात्मक स्थिरता का उदाहरण - सुगंधित कपूर के टुकड़े को कमरे के अन्दर रखने पर तथा दोपहर में सूर्य की रोशनी में रखने पर व्यक्ति उसे कपूर के टुकड़े के रूप में ही प्रत्यक्षित करेगा। हालॉकि सूर्य की रोशनी में कपूर के चमकीलेपन का स्तर कमरे में उत्पन्न चमकीलेपन के स्तर की अपेक्षा अधिक होता है। ठीक इसी प्रकार से किसी बालक, वयस्क अथवा स्त्री को हम पॉच फीट की दूरी से देखें या 10 फीट की दूरी से देखें, उसे वही व्यक्ति के रूप में हम देखते हैं हालॉकि पॉच फीट की दूरी से देखने पर जो अक्षिपटलीय प्रतिबिम्ब (रेटीनल इमेज) बनती है, 10 फीट की दूरी से देखनेपर बने अक्षिपटलीय प्रतिबिम्ब की अपेक्षा बड़ा ही होता है। इस तरह से हमे

प्रमाण मिलते हैं कि भौतिक वातावरण में परिस्थितियों में परिवर्तन होने के बावजूद भी हम वस्तुओं या उद्दीपकों को प्रत्यक्षण पहले की तरह ही करते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि प्रत्यक्षणात्मक स्थिरता की इस घटना की व्याख्या किस प्रकार से की जाती है? मनोवैज्ञानिकों ने इसकी व्याख्या में दो मुख्य कारणों पर प्रकाश डाला है।

प्रथम कारण - जिस उद्दीपक वस्तु का प्रत्यक्षण किया जाता है उसकी अपनी पृष्ठभूमि के साथ एक निश्चित एवं स्थिर संबंध होता है। इस सम्बंध के कारण भौतिक वातावरणीय परिस्थिति में बदलाव होने के बावजूद भी व्यक्ति किसी वस्तु को पहले के समान ही प्रत्यक्षित करता है। उदाहरणार्थ - अगर एक नीले पेन को सफेद कागज के टुकड़े पर रखकर प्रदर्शित किया जाये और फिर पीले कागज के टुकड़े पर उसी पेन को रखकर प्रदर्शित किया जाये तो हम दोनों ही परिस्थितियों में नीले पेन को नीला ही देखते हैं क्योंकि पेन जो कि इस उदाहरण में उद्दीपक के रूप में है इसका अपनी पृष्ठभूमि अर्थात् नीला रंग के साथ एक अटल सम्बन्ध है।

द्वितीय कारण - मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मनुष्यों में वातावरण में उपस्थित उद्दीपकों के कुछ खास-खास गुणों एवं विशेषताओं को पहचान हेतु चुन लेने की प्रवृत्ति होती है। इन खास गुणों एवं विशेषताओं की सहायता से हम उदीपक वस्तु अथवा व्यक्ति में थोड़े अंशों में हुये बदलाव व विकृति के बावजूद पहले ही की तरह प्रत्यक्षण कर लेते हैं। उदाहरण के लिए सिनेमा में हम एक ही अभिनेता अथवा अभिनेत्री को कई प्रकार के चरित्रों का अभिनय करते हुए देखते हैं। इन चरित्र पात्रों में ढलने के लिए अभिनेता व्यक्ति को कई प्रकार के वस्त्र एवं श्रृंगार करना पड़ता है बावजूद इसके हम उनके कुछ मुख्य गुणों एवं विशेषताओं जैसे कि बोलने का ढंग, चलने का ढंग, संवाद अदायगी, भाव भंगिमा, बनावट आदि को अपने मन में इसे तरह से संजो कर रखे रहते हैं कि उन्हें पहचानने में अर्थात् उनके सही प्रत्यक्षण में कोई विशेष कठिनाई नहीं होती है। कभी कभी हम ठीक-ठीक प्रत्यक्षण कर पाने में सफल नहीं भी हो पाते हैं। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार अगर उद्दीपक की अवस्थाओं में बहुत अधिक बदलाव की दशा में प्रत्यक्षण में स्थिरता संभव नहीं होती है।

प्रत्यक्षणात्मक स्थिरता का अध्ययन दो प्रकार से किया जाता है। 1. वस्तुओं से संबंधित प्रत्यक्षणात्मक स्थिरता, 2. वस्तुओं के गुणों से संबंधित प्रत्यक्षणात्मक स्थिरता। वस्तुओं से संबंधित प्रत्यक्षणात्मक स्थिरता में वस्तु के आकार तथा रूप की प्रत्यक्षणात्मक स्थिरता का अध्ययन किया जाता है। वस्तुओं के गुणों से संबंधित प्रत्यक्षणात्मक में वस्तुओं की विशेषताओं जैसे कि वस्तु का रंग, वस्तु की चमक आदि की प्रत्यक्षणात्मक स्थिरता अध्ययन की विषयवस्तु होती हैं। कुछ प्रमुख स्थिरताओं का वर्णन निम्नांकित है।

आकार स्थिरता (size constancy) - जब हम किसी वस्तु को देखते हैं तो उस वस्तु का प्रतिबिम्ब हमारे अक्षिपटल (रेटीना) पर बनता है। इस प्रतिबिम्ब को अक्षिपटलीय प्रतिबिम्ब कहा जाता है। जिसका आकार व्यक्ति तथा देखे जाने वाली वस्तु की दूरी पर निर्भर करता है। यदि यह दूरी अधिक है, तो अक्षिपटलीय प्रतिबिम्ब के आकार में परिवर्तन होने से हमें वस्तु के आकार में भी उसी अनुपात में बदलाव का प्रत्यक्षण होना चाहिए था।

परन्तु वस्तुतः सच्चाइ़ ये नहीं है। हम अपने मित्र को 10 फीट की दूरी से देखें अथवा दो फीट की दूरी से देखें, उसकी ऊँचाई, चौड़ाई, और कद को हम समान रूप से देखते हैं। हालाँकि इन दोनों दूरियों के कारण रेटीना पर बनने वाले प्रतिबिम्ब के आकार में काफी परिवर्तन हो जाता है। रेटीनल इमेज के आकार में तथा देखे जाने वाली वस्तु की दूरी के परिणामस्वरूप हुए बदलाव के बावजूद भी वस्तु के आकार के प्रत्यक्षण में जो स्थिरता होती है, उसे प्रत्यक्षणात्मक स्थिरता कहा जाता है।

आकार स्थिरता की सैद्धान्तिक व्याख्या - इसकी व्याख्या तीन प्रकार से मिलती है। प्रथम व्याख्या के अनुसार आकार स्थिरता का कारण यह है कि व्यक्ति को देखे जाने वाली वस्तु का वास्तविक आकार, उसकी दूरी आदि पहले से उसे ज्ञात होती है। फलतः वस्तु या व्यक्ति चाहे दो फीट की दूरी पर हो या 10 फीट की दूरी पर, हम उसके आकार का प्रत्यक्षण ठीक पहले के समान ही करते हैं।

द्वितीय व्याख्या के अनुसार आकार स्थिरता का कारण देखी जाने वाली वस्तु या व्यक्ति के गठन तथा उसे वस्तु की पृष्ठभूमि दोनों में एक साथ होने वाला परिवर्तन है। इसके परिणामस्वरूप वस्तु तथा उसकी पृष्ठभूमि के बीच का संबंध पूर्ववत बना रहता है। जब वस्तु व्यक्ति से दूरी पर होती है तो उस वस्तु तथा उसकी पृष्ठभूमि में एक साथ ही परिवर्तन होता है। फलतः इन दोनों के बीच का अनुपात वही रह जाता है। उसी तरह जब वस्तु व्यक्ति के नजदीक होती है, तो उस वस्तु एवं उसकी पृष्ठभूमि में एक ही साथ परिवर्तन होता है और यहाँ भी अनुपात वही रहता है। अतः हमें वस्तु की आकार स्थिरता का प्रत्यक्षण होता है। इस व्याख्या में गिब्सन द्वारा 1950 में किये गये कार्य का महत्वपूर्ण योगदान है।

तीसरी व्याख्या रॉक एवं इबेनहोल्ट्ज द्वारा 1959 में प्रतिपादित की गयी है। इस व्याख्या का आधार देखी जाने वाली वस्तुओं का सापेक्ष आकार होता है। इस व्याख्या के अनसार व्यक्ति किसी वस्तु के आकार को अन्य आस-पास की वस्तुओं के आकार के संदर्भ में इस ढंग से देखता है कि उनका आपसी अनुपात स्थिर रहता है। इसके फलस्वरूप आकार स्थिरता का अनुभव व्यक्ति को होता है।

रूप स्थिरता (Shape constancy) - वस्तु के रूप के प्रत्यक्षण में भी स्थिरता होती है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में यदि एक ही वस्तु को भिन्न-भिन्न कोणों से हम देखते हैं तो इससे उत्पन्न अक्षिपटलीय प्रतिबिम्ब में परिवर्तन आ जाता है। इसके बावजूद भी व्यक्ति उस वस्तु को ठीक पहले के रूप में ही देखता है। इसे ही रूप स्थिरता कहा जाता है। उदाहरण के लिए हम कमरे के दरवाजे को चाहे किसी भी कोण से देखें वह हमें आयताकार ही दिखाई देता है।

रूप स्थिरता की सैद्धान्तिक व्याख्या - रूप स्थिरता की व्याख्या करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने रूप तिरक्षेपन अपरिवर्त्य प्राकल्पना (shape-slant invariance hypothesis) का निर्माण किया है। इस प्राक्कल्पना के अनुसार प्रत्यक्षणकर्ता किसी वस्तु के अक्षिपटलीय रूप तथा उसके तिरक्षेपन से प्राप्त सूचनाओं

को संयोजित करके उसका एक वस्तुनिष्ठ रूप का परिकलन करता है। यही कारण है कि विभिन्न तिरक्षेपन की परिस्थिति में वस्तु के होने के बावजूद भी व्यक्ति वस्तु के वास्तविक रूप का प्रत्यक्षण कर लेता है।

दीप्ति या चमक स्थिरता (brightness constancy)- जिन वस्तुओं को हम देखते हैं, उनकी चमक के स्तर में एक तरह की स्थिरता का प्रत्यक्षण हम उन परिस्थितियों में भी करते हैं जब उन वस्तुओं द्वारा परावर्तित रोशनी की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। इसे ही चमक स्थिरता की संज्ञा दी गयी है। उदाहरण के लिए बर्फ के टुकड़े को चाहे संध्या समय देखें अथवा दोपहर की रोशनी में वह समान ढंग से उजला नजर आता है दोपहर में बर्फ द्वारा परावर्तित रोशनी की मात्रा संध्या की अपेक्षा कहीं अधिक होती है।

रंग स्थिरता (Colour constancy) - एक ज्ञात रंग की वस्तु को यदि हम भिन्न रंगों के संदर्भ में रखकर देखें, तो वस्तु का रंग वही दीख पड़ता है, जो पहले था। उदाहरण के लिए एक हरे अमरूद को आप पीले कागज के टुकड़े पर रखकर देखें या सफेद कागज के टुकड़े पर रखकर देखें वह हरा ही नजर आयेगा हालॉकि दोनो परिस्थितियों में पृष्ठभूमि का रंग अलग-अलग है।

10.6 सारांश

गहराई का प्रत्यक्षण व्यक्ति को कुछ संकेतों की सहायता से होता है। ये संकेत दो प्रकार के होते हैं एक-अक्षीय अथवा एकनेत्रीय संकेत एवं द्विनेत्री संकेत। गहराई का प्रत्यक्षण दोनों ही संकेतों के आधार पर होता है। वास्तविकता यह है कि हम इन दोनों तरह के संकेतों का जब उपयोग करते हैं तो गहराई का प्रत्यक्षण परिशुद्ध होता है। अगर हम सिर्फ एक ही प्रकार के संकेत का उपयोग करें तो गहराई का प्रत्यक्षण उतना सही नहीं हो पायेगा। यही कारण है कि एक ऑख के व्यक्ति में गहराई का प्रत्यक्षण दो ऑख वाले व्यक्ति के प्रत्यक्षण से थोड़ा अस्पष्ट एवं निम्न कोटि का होता है।

पैटर्न प्रत्यभिज्ञान रोजमर्रा की एक बहुत ही महत्वपूर्ण घटना है जिसके सहारे हम अपने आस-पास की घटनाओं का अर्थ समझते हैं। व्यक्ति को सार्थक ढंग से वातावरण के साथ अंतःक्रिया करने के लिए यह आवश्यक है कि वह उस वातावरण के विभिन्न उद्दीपक पैटर्न की पहचान करे। मैटलिन नामक मनोवैज्ञानिक ने सन 1983 में अपनी पुस्तक ‘परसेप्सन’ में इसे परिभाषित करते हुए कहा है कि ‘‘ पैटर्न प्रत्यभिज्ञान से तात्पर्य संवेदी उद्दीपकों द्वारा की जा रही जटिल व्यवस्थाओं की पहचान कर लेने से होता है ("Pattern recognition referes to the identification of complex management of sensory stimuli")।

प्रत्यखण का एक विशेष गुण यह है कि इसके द्वारा हमें वस्तुओं का ज्ञान उसके भौतिक परिस्थितियों में परिवर्तन के बावजूद भी समान रूप से होता है। भिन्न भिन्न परिस्थितियों में उद्दीपक को करीब-करीब समरूप ढंग से प्रत्यक्षण करने की इस प्रवृत्ति को प्रत्यक्षणात्मक स्थिरता की संज्ञा दी जाती है। किसी व्यक्ति को हम चार फीट

की दूरी से देखें या 15 फीट की दूरी से देखें उसे हम समान देखते हैं। इस तरह की स्थिरता को प्रत्यक्षणात्मक स्थिरता की संज्ञा दी जाती है। यह कई प्रकार की होती है। आकार स्थिरता, रूप स्थिरता एवं चमक स्थिरता।

10.7 शब्दावली

- **प्रत्यक्षण:** प्रत्यक्षण एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों द्वारा वातावरण में उपस्थित वस्तुओं अथवा घटनाओं का ज्ञान प्राप्त करता है।
- **पैटर्न प्रत्यभिज्ञान:** संवेदी उद्दीपकों द्वारा की जा रही जटिल व्यवस्थाओं की पहचान कर लेना होता है ।
- **प्रत्यक्षणात्मक स्थिरता:** अलग-अलग परिस्थितियों में उद्दीपक वस्तुओं को करीब-करीब समरूप ढंग से प्रत्यक्षण करने की प्रवृत्ति ।

10.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1) एक कलम को व्यक्ति दो मीटर की दूरी से देखे या पॉच मीटर की दूरी से देखे उसका प्रत्यक्षण बिलकुल ही एक समान होता है। इसका कारण निम्नांकित में से क्या हो सकता है?

   (क) प्रत्यक्षणात्मक आत्मसात्मकर (perceptual assimilation)

   (ख) प्रत्यक्षणात्मक स्थिरता (perceptual constancy)

   (ग) प्रत्यक्षणात्मक विरोध (perceptual contrast)

   (घ) प्रत्यक्षणात्मक आत्मसात्मकर (perceptual vigilance)

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति करें-

   i) प्रत्यक्षणात्मक स्थिरता एक तरह का प्रत्यक्षणात्मक.....................है।

   ii) ऊँचाई संकेत एक तरह का......................................संकेत है।

उत्तर: 1 - ख 2 - i) विकृति ii) एकनेत्री

10.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- उच्चतर प्रायोगिक मनोविज्ञान - डा. अरूण कुमार सिंह - मोतीलाल – बनारसीदा
- सामान्य मनोविज्ञान - सिन्हा एवं मिश्रा - भारतीय भवन
- आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान - सुलैमान एवं खान - शुक्ला बुक डिपो, पटना
- एक्सपेरिमेन्टल साइकोलॉजी - कॉलिन्स एवं ड्रेक

10.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गहराई प्रत्यक्षण के सिद्धान्तों का सोदाहरण वर्णन करें।
2. विभिन्न प्रकार के प्रत्यक्षणात्मक स्थिरता के सैद्धान्तिक प्रक्रम का वर्णन करें।
3. प्रत्यक्षणात्मक स्थिरता से आप क्या समझते हैं? इसके विभिन्न प्रकारों का वर्णन करें।
4. गहराई के प्रत्यक्षण में एकनेत्री संकेत तथा द्विनेत्री संकेत के महत्व का वर्णन करें।
5. पैटर्न पहचान की व्याख्या से संबंधित सिद्धान्तों का विशद वर्णन करें।

इकाई-11 भ्रम एवं उसके सिद्धान्त
(Illusion and its Theories)

इकाई संरचना

11.1 प्रस्तावना

11.2उद्देश्य

11.3भ्रम का स्वरूप

11.4भ्रम के प्रकार

11.5भ्रम के सिद्धान्त

11.6 सारांश

11.7शब्दावली

11.8स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

11.9सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.10 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

प्रत्यक्षण के अध्ययन के दौरान विद्यार्थियों के जेहन में एक सवाल हमेशा कौंध उठता है कि हमारे दिन प्रतिदिन के जीवन में हमें गलत प्रत्यक्षण क्योंकर होता है अर्थात् जो वस्तु जिस रूप में विद्यमान होती है उसे उसके उसी यथार्थ रूप में न देख कर किसी और रूप में देखना तथा तदनुरूप विवेचन करना। इस प्रकार की घटना को वस्तुत गलत प्रत्यक्षण यानि की भ्रम की संज्ञा दी जाती है। उदाहरणार्थ, यदि रस्सी को कम रोशनी होने की वजह से आप सांप समझ बैठते हैं तो यह गलत प्रत्यक्षण यानि कि भ्रम का उदाहरण होगा। इस इकाई आप को भ्रम के संबंध में समस्त प्रकार की जानकारी प्राप्त होगी।

11.2उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- भ्रम के स्वरूप को जान सकेंगे।
- भ्रम के प्रकारों का वर्णन कर सकेंगे।
- भ्रम पर लेख लिख सकेंगे।
- भ्रम के सिद्धान्तों का वर्गीकरण कर सकेंगे।

- प्रत्यक्षण एवं भ्रम में अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे।

11.3भ्रम का स्वरूप

गलत प्रत्यक्षण को भ्रम कहा जाता है। उदाहरणार्थ, यदि अंधेरे में भैंस को आप गाय के रूप में अथवा कुत्ते को बकरी के रूप में प्रत्यक्षण करते हैं तो यह भ्रम का उदाहरण होगा। कई बार शाम के समय जब कि सूर्यास्त हो रहा हो, गोधूलि कि वेला हो। ऐसे समय में वातावरण में एक प्रकार का धुंधलका सा छाया रहता है एवं तकरीबन सभी ग्वालों को अपने पशुधन को पहचानने में अक्सर गलती हो जाया करती है। यह केवल ग्वालों के साथ ही नहीं होता बल्कि हम लोग अपने संबंधियों, इष्ट मित्रों, सहपाठियों आदि को पहचानने में भी कई बार गलती कर बैठते हैं एवं उसके बाद वस्तुस्थिति ज्ञात होने पर हम उनसे यह कहते पाये जाते हैं कि हमें भ्रम हो गया था। उपरोक्त उदाहरणों से भ्रम की कई विशेषताओं पर प्रकाश पड़ता है। ये विशेषताएँ निम्न हैं।

भ्रम एक तरह का प्रत्यक्षण न कि अप्रत्यक्षण या धोखा है। प्रत्यक्षण की श्रेणी में आते हुए भी इसे भ्रम इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसमें जो प्रत्यक्षण होता है, वह पूर्व में हुए प्रत्यक्षण से भिन्न होता है। जैसे - भैंस को जब हम अंधेरे में गाय प्रत्यक्षण करते हैं अथवा रस्सी को हम सांप प्रत्यक्षित करते हैं तो यह प्रत्यक्षण पूर्व में हुए प्रत्यक्षण यानी भैंस को भैंस के रूप में व रस्सी को रस्सी के रूप में किए गए प्रत्यक्षण से भिन्न होता है।

चूँकि भ्रम एक प्रकार का प्रत्यक्षण ही है अतः भ्रम की उत्पत्ति के लिए यह आवश्यक है कि उद्दीपक उपस्थित हो। उपर्युक्त उदाहरण में रस्सी एक उद्दीपक है जिसका प्रत्यक्षण सॉप के रूप में किया गया है। यदि किसी व्यक्ति को बिना उद्दीपक के ही कुछ प्रत्यक्षण होता है तो वह भ्रम नहीं बल्कि विभ्रम कहलाता है। भ्रम एवं प्रत्यक्षण में क्या समानता एवं अन्तर है एवं भ्रम किस प्रकार विभ्रम से भिन्न है इसका वर्णन निम्नांकित पंक्तियों किया गया है।

प्रत्यक्षण तथा भ्रम में बुनियादी समानता -

प्रत्यक्षण एक संज्ञानात्मक मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा हमें उपस्थित व्यक्तियों, वस्तुओं एवं घटनाओं का अर्थपूर्ण ज्ञान होता है। भ्रम भी एक प्रकार का प्रत्यक्षण है जिसके द्वारा हमें वस्तुओं, व्यक्तियों एवं घटनाओं का अर्थपूर्ण ज्ञान होता है। अर्थात् इस दृष्टि से दोनों में काफी समानता है यह इसलिए है क्योंकि भ्रम प्रत्यक्षण का ही एक प्रकार है। ये दोनों ही मानकिस प्रक्रियाएँ हैं जिनके सहारे वातावरण में उपस्थित वस्तुओं एवं व्यक्तियों के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है। इन दोनों के लिए उद्दीपक का होना भी अनिवार्य है, बिना उद्दीपक की उपस्थिति के प्रत्यक्षण एवं भ्रम दोनों ही नहीं हो सकते हैं। ये दोनों ही एक प्रकार की चयनात्मक प्रक्रियायें हैं। इन समानताओं के बावजूद दोनों में अन्तर हैं।

प्रत्यक्षण एवं भ्रम में बुनियादी अन्तर -

1) प्रत्यक्षण में व्यक्ति को उद्दीपक का यथार्थ एवं सही ज्ञान होता है परन्तु भ्रम में उद्दीपक का अयथार्थ एवं गलत ज्ञान होता है। अंधेरे में रस्सी को रस्सी के रूप में देखना प्रत्यक्षण कहलायेगा परन्तु रस्सी को सॉप के रूप में देखना भ्रम का उदाहरण होगा।
2) प्रत्यक्षण का स्वरूप स्थायी होता है परन्तु भ्रम का स्वरूप अस्थायी एवं क्षणिक होता है। जैसे-एक पेंसिल को हम हमेशा पेंसिल के रूप में प्रत्यक्षण करते हैं परन्तु थोड़ी सी रोशनी होते ही रस्सी को सांप के रूप में देखने का भ्रम समाप्त हो जाता है।
3) अभ्यास से प्रत्यक्षण में थोड़ी स्पष्टता बढ़ जाती है तथा भ्रम की मात्रा में कमी होने लगती है। जैसे, यदि हम किसी सेब के पेड़ को बार-बार देखते हैं तो उस पेड़ की टहनियाँ, फल, पत्तों के बीच बने मकडी के जाले आदि का भी प्रत्यक्षण होने लगता है। दूसरी तरफ अभ्यास के प्रभाव से भ्रम की मात्रा घटती है क्योंकि अभ्यास से प्रत्यक्षण की स्पष्टता बढ़ जाती है।
4) सभी सामान्य व्यक्तियों में किसी उद्दीपक का प्रत्यक्षण करीब-करीब एक समान होता है। परन्तु एक ही उद्दीपक सभी व्यक्तियों में समान भ्रम पैदा करें ऐसी जरूरी नहीं है। उदाहरणार्थ, एक भैंस को सभी सामान्य भैंस के रूप में ही प्रत्यक्षित करेंगे परन्तु अंधेरे में बैठी हुई गाय को देखकर कोई भैंस, कोई बैल, कोई कूड़े का ढेर आदि के रूप में उसे प्रत्यक्षण कर सकता है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि प्रत्यक्षण एवं भ्रम में बुनियादि समानताएँ होने के बावजूद बहुत बड़ा अन्तर है।

भ्रम तथा विभ्रम में अन्तर -

भ्रम एक प्रकार का गलत प्रत्यक्षण है। चूँकि भ्रम एक प्रकार का प्रत्यक्षण ही है अतः इसके लिए उद्दीपक का होना अनिवार्य है। परन्तु कभी-कभी हमें प्रत्यक्षण बिना किसी उद्दीपक का ही होता है। इस तरह के प्रत्यक्षण को विभ्रम की संज्ञा दी जाती है। विभ्रम एक प्रकार का गलत संवेदी प्रत्यक्षण होता है, इसे गलत इंद्रिय प्रत्यक्षण भी कहा जाता है। गलत इंद्रिय प्रत्यक्षण से तात्पर्य यह होता है कि यदि हमारी चक्षु-इंद्रिय यानि कि हमारी ऑखे किसी उ्दीपक के हमारे वातावरण में उपस्थित नहीं होने के बावजूद भी उसका प्रत्यक्षण करती हों अथवा हमारे कान हमारे वातावरण में न गूँजने वाली आवाज को भी सुन रही हों जिसका कि अनुभव अन्य व्यक्तियों को अपनी इंद्रियों के माध्यम से न हो रहा हो ऐसी अनुभवों को गलत इंद्रिय प्रत्यक्षण कहा जाता है। इसे संक्षेप में विभ्रम कहते हैं। उदाहरणस्वरूप, अंधेरे कमरे में यदि आपको किसी के उपस्थित न होने पर भी किसी व्यक्ति का प्रत्यक्षण होता है तो यह स्पष्ट रूप से नेत्रइंद्रिय के विभ्रम का उदाहरण होगा। वहीं यदि किसी वस्तु जैसे आलमारी को देखकर उस अंधेरे कमरे में प्रत्यक्षणकर्ता को किसी व्यक्ति का प्रत्यक्षण होता हो तो इसे भ्रम का एक स्पष्ट उदाहरण कहा जायेगा। इस तरह से हम देखते हैं कि भ्रम तथा विभ्रम दोनों ही में व्यक्तियों को गलत ज्ञान होता है। इस समानता के बावजूद भी इन तीनों में निम्नांकित अन्तर हैं-

(i) भ्रम में उद्दीपक उपस्थित होता है परन्तु विभ्रम में उद्दीपक नहीं होता है। जैसे अंधेरे में भैंस को गाय के रूप में देखना एक भ्रम का उदाहरण है परन्तु अंधेरे स्थान पर कुछ नहीं होने पर भी यदि कोई किसी पशु अथवा व्यक्ति को देखता है तो यह विभ्रम का उदाहरण है।

(ii) भ्रम अधिकतर बाह्य कारणों से होता है परन्तु विभ्रम अधिकतम आत्मनिष्ठ कारकों जैसे - चिन्ता, भय, मानसिक रोग आदि कारकों से होता है।

(iii) चूँकि भ्रम में उद्दीपक मौजूद रहता है, अतः इसका स्वरूप करीब-करीब स्पष्ट होता है। परन्तु विभ्रम में उद्दीपक नहीं होता है, अतः इसका स्वरूप अस्पष्ट होता है। उदाहरणस्वरूप अंधेरे में रस्सी को देखकर कोई व्यक्ति सॉप या लम्बे आकार की ही कोई वस्तु समझ सकता है, कोई स्त्री या पुरूष को नहीं। परन्तु यदि विभ्रम हो रहा हो तो व्यक्ति उस विभ्रम में कुछ भी देख सकता है। महिला, पुरूष आलमारी आदि कुछ भी दिखाई दे सकता है। स्पष्टतः विभ्रम का स्वरूप कुछ अनिश्चित होता है।

(iv) विभ्रम प्रमुख रूप से मनोरोगियों में पाया जाता है। मनोरोगियों में भी यह ज्यादा मात्रा में साइकोसिस के रोगियों में पाया जाता है। सिजोफ्रेनिया जिसे कि हिन्दी भाषा में मनोविदालिता कहा जाता है में विभ्रम पूर्ण रूप से पाया जाता है, एक प्रकार से यह मनोविदालिता का प्रमुख लक्षण है। इस मानसिक विकृति में रोगी को विचित्र प्रकार के विभ्रम होते हैं इसमें कुछ को तो देवदूत तो कुछ को शैतान अथवा अपने मृत संबंधी आदि के साथ मिलने अथवा जीने का अनुभव होता है। सामान्य व्यक्ति के भ्रम का स्वरूप स्थायी तथा अस्थायी दोनों ही होता है। परन्तु सामान्य व्यक्तियों में विभ्रम का स्वरूप हमेशा अस्थायी होता है। परन्तु असामान्य व्यक्तियों में विभ्रम का स्वरूप स्थायी होता है।

11.4भ्रम के प्रकार

भ्रम कई प्रकार के होते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने सामान्य रूप से दो तरह के भ्रमों का उल्लेख किया है- भौतिक भ्रम (फिजिकल इल्यूजन) तथा प्रत्यक्षज्ञानात्मक भ्रम (परसेप्चुअल इल्यूजन)। भौतिक भ्रम की उत्पत्ति ग्राहक कोशिकाओं तक पहुँचने वाली सूचनाओं में विकृति उत्पन्न होने से होती है। प्रत्यक्षज्ञानात्मक भ्रम की उत्पत्ति उद्दीपकों में सन्निहित कुछ भ्रामक संकेतों से होता है। भौतिक भ्रम ऐसे होते हैं जो अधिकांशतः व्यक्तियों में समान रूप से होते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने इस तरह के भ्रम को सर्वव्यापी या सामान्य भ्रम (यूनीवर्सल भ्रम) भी कहा है। कुछ दूरी पर आकाश का पृथ्वी से सटा हुआ दिखाई देना, दो रेल की पटरियों का कुछ दूर आगे चलकर आपस में सटा हुआ नजर आना तथा पानी में रखी छड़ी का झुका हुआ प्रत्यक्षण करना आदि सर्वव्यापी भ्रम के कुछ उदाहरण हैं। इस तरह के भ्रम की एक विशेषता है कि यह स्थायी होता है। अतः इसे स्थायी भ्रम (परमानेन्ट इल्यूजन) भी कहा जाता है। प्रत्यक्षज्ञानात्मक भ्रम ऐसे होते हैं जो व्यक्तिगत होते हैं अर्थात् एक व्यक्ति को वह भ्रम होगा तो दूसरे व्यक्ति को वही भ्रम न होकर कुछ दूसरा होगा। उदाहरणार्थ, अंधेरे में किसी खम्भे को सीध गड़ा देखकर एक व्यक्ति को किसी आदमी का भ्रम, तो दूसरे को कोई भूत-प्रेत का ,तीसरे को चोर के छिपे होने का भ्रम हो सकता है। प्रकाश उपस्थित होने पर ये सभी भ्रम दूर हो जाते हैं। यही कारण है कि व्यक्तिगत भ्रम क्षणिक होता है। मनोवैज्ञानिकों ने भ्रम का बहुविध अध्ययन कर इसके कई प्रकारों का वर्णन किया है।

1) मूलर लायर भ्रम (Muller-Lyer illusion) इस भ्रम का नामकरण दो मनोवैज्ञानिकों के नाम पर किया गया है मूलर एवं लायर ।इन दोनों ने ही इसका प्रतिपादन किया था। इस भ्रम में दो समान लम्बाई की रेखाए होती हैं- एक तीर रेखा तथा दूसरी पंख रेखा। इन दोनों रेखाओं में व्यक्ति तीर रेखा को पंख रेखा से छोटा समझता है हालॉकि दोनों रेखाओं की लम्बाई बराबर होती है। चित्र 'क' में देखें।

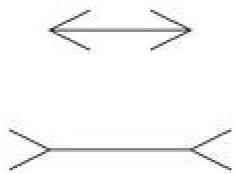

चित्र 'क'

2) पोन्जो भ्रम (Ponzo illusion) इसे चित्र 'ख' में देखें। इस चित्र में दो असामान्तर रेखायें फैलाव लेते हुए निकल रही हैं एवं इस फैलाव के बीच दो समानान्तर क्षैतिज रेखाएँ विद्यमान हैं इन रेखाओं में ऊपर की रेखा नीचे की समानान्तर रूप से पड़ी रेखा से बड़ी मालूम होती है हालॉकि वस्तुस्थिति यह है कि दोनों समानान्तर रेखाओं की लम्बाई बराबर है।

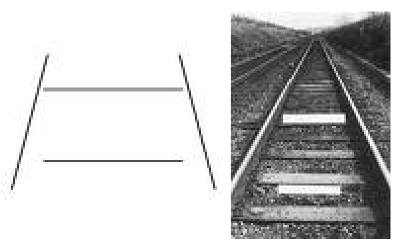

चित्र 'ख'

3) क्षैतिज-लम्बवत भ्रम (horizontal-Vertical illusion) - इस भ्रम को चित्र 'ग' के द्वारा समझा जा सकता है। इस चित्र में दो रेखायें हैं जिनमें एक क्षैतिज रेखा तथा दूसरी लम्बवत रेखा है। लम्बवत रेखा क्षैतिज रेखा के ऊपर खड़ी है। इस प्रकार के चित्र को देखने पर व्यक्ति यही कहता है कि लम्बवत रेखा क्षैतिज रेखा यानि पड़ी रेखा से बड़ी है। जबकि वास्तविकता यह है कि क्षैतिज एवं लम्बवत दोनों ही रेखायें एक दूसरे के बराबर हैं। इसीलिए इसे क्षैतिज-लम्बवत भ्रम कहा जाता है।

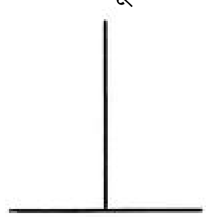

चित्र 'ग'

4) जैस्ट्रो भ्रम (Jastrow illusion) - जैस्ट्रो भ्रम को चित्र 'घ' में दिखलाया गया है। इस चित्र में दो पैटर्न दिखलाये गये हैं। दोनों पैटर्न बिलकुल एक दूसरे के समान हैं। परन्तु ऊपर का पैटर्न नीचे के पैटर्न से छोटा दिखलाई पड़ता है।

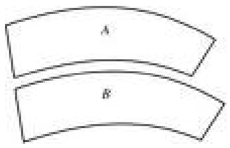

चित्र 'घ'

5) डेलबोफ भ्रम (Delboef illusion) - इस तरह के भ्रम को चित्र 'च' में दिखाया गया है। इस चित्र में दो समान वृत्तों को दो परिस्थितियों में रखा गया है। एक वृत्त बड़े गोले के भीतर है तथा दूसरा वृत्त छोटे गोले के भीतर है। बड़ा गोला के भीतर का वृत्त छोटे गोले के भीतर के वृत्त से छोटा दिखलाई पड़ता है, हालाँकि दोनों वृत्त समान हैं।

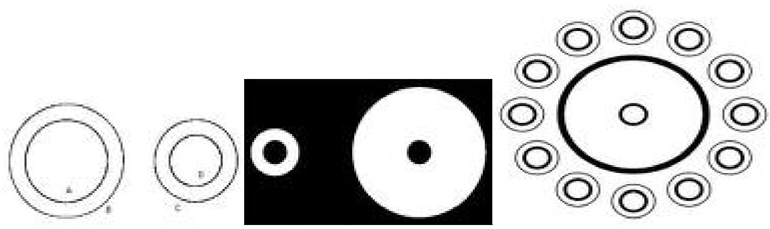

चित्र 'च'

6) ऑर्बिस भ्रम (Orbison illusion) - इस भ्रम को चित्र 'छ' में दिखलाया गया है। इस चित्र में एक बड़े चक्र के भीतर एक छोटा वृत्त है। परन्तु यह छोटा वृत्त बड़े चक्र के भीतर कुछ विकृत सा दिखलाई पड़ता है। जबकि वास्तविकता यह है कि छोटे वृत्त में किसी प्रकार की कोई ज्यामितीय विकृति नहीं है बल्कि यह बड़े चक्र के भीतर होने की वजह से विकृति का भ्रम पैदा हो रहा है।

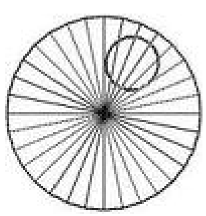

चित्र 'छ'

7) अर्नस्टीन भ्रम (Ehrnestein illusion) - इस तरह के भ्रम को चित्र 'ज' में दिखलाया गया है। इस चित्र में बीच का वर्ग कुछ विकृत दिखलाई पड़ता है। हालॉकि वर्ग की चारों भुजाओं की लम्बाई समान है और सभी रेखाएँ सीधी हैं।

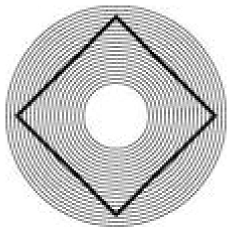

चित्र 'ज'

8) जॉलनर भ्रम (Zollner illusion) - इस भ्रम को चित्र 'झ' में दिखलाया गया है। इस चित्र में छोटी बड़ी सात समानान्तर रेखायें हैं जो सभी एक ही दिशा में हैं। परन्तु देखने में ऐसा लगता है कि इन सात समानान्तर रेखाओं की दिशा में विकृति है अर्थात् वे अलग-अलग दशाओं में हैं।

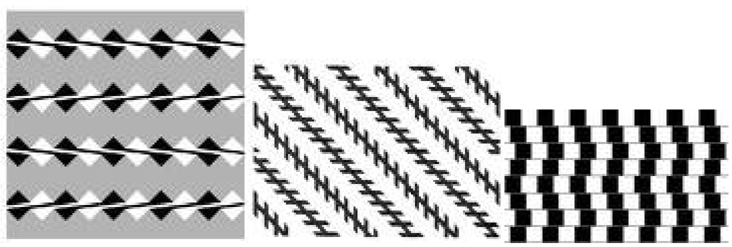

चित्र 'झ'

9) वुंट भ्रम (Wundt illusion) - इस भ्रम को चित्र 'ट' में दिखलाया गया है। इस चित्र में दोनों पड़ी समानान्तर रेखाएँ यद्यपि बिलकुल सीधी दिशा में हैं फिर भी बीच में कुछ विकृत दीख पड़ती हैं। दूसरे शब्दों में बीच में ये दोनों रेखाएँ कुछ एक-दूसरे की ओर सटती हुई दीख पड़ती हैं।

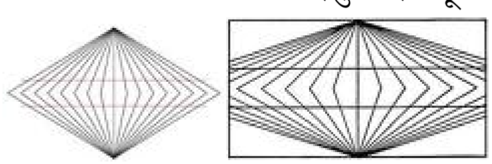

चित्र 'ट'

10) घुमाव रस्सी भ्रम (Twisted-cord illusion) - इस भ्रम को चित्र 'ठ' में दिखलाया गया है। इस चित्र में एक घुमावदार रस्सी है अगर कोई व्यक्ति इस चित्र में घुमावदार रस्सी के बाहरी एवं ऊपरी छोर पर भीतर जाने के लिए चलना प्रारंभ करता है तो वह भीतर जाने के बजाय घूमते-घूमते पुनः उसी स्थान पर पहुँच जाता है।

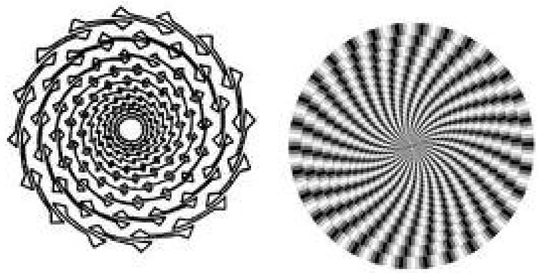

चित्र 'ठ'

11) सैण्डर समानान्तर चतुर्भुज भ्रम (Sander parallelogram illusion) इस भ्रम को चित्र 'ड' में दिखलाया गया है। इस चित्र में एक समानान्तर चतुर्भुज है। इस चतुर्भुज में दो विकर्ण हैं ये दोनों विकर्ण में पहला यानि कि बायीं तरफ वाला विकर्ण अधिकांशतः व्यक्तियों को दूसरे विकर्ण यानि कि दायीं तरफ वाले विकर्ण से बड़ा दिखलाई पड़ता है। हालॉकि सच्चाई यह है कि दोनों विकर्ण लम्बाई में एक दूसरे के समान है।

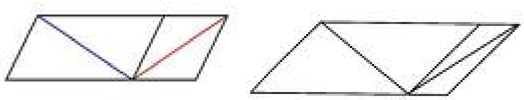

चित्र 'ड'

12) पोगेनडॉर्फ भ्रम (Poggendorff illusion) - इस भ्रम को चित्र 'ढ' में दिखलाया गया है। इस चित्र में एक ही तिरछी रेखा जिसे कि विकर्ण कहा जा सकता है दो समान आयत को काटती है। परन्तु ऐसा लगता है कि एक ही तिरछी रेखा नहीं बल्कि तीन अलग-अलग तिरछी रेखाएँ हैं जो इन दोनों आयतों को काट रही हैं।

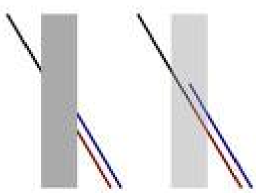

चित्र 'ढ'

11.5 भ्रम के सिद्धान्त

भ्रम का सबसे पहला वैज्ञानिक विश्लेषण जे.जे. ओप्पेल द्वारा सन् 1854 में किया गया और उसके बाद फिर उसके गहन अध्ययन में कई मनोवैज्ञानिकों ने रूचि दिखलाई। मनोवैज्ञानिकों ने भ्रम से संबंधित अनेकों अध्ययन किए जिनके आधार पर भ्रम के कई सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। ओवर-1968, रॉक-1975, जुसने-1970 तथा हॉकबर्ग-1971 आदि प्रमुख मनोवैज्ञानिक हैं जिनका सिद्धान्तों के प्रतिपादन में महत्वपूर्ण योगदान है। इन वैज्ञानिकों ने सिद्धान्तों को तीन श्रेणियों में बॉटा है। प्रथम श्रेणी में भ्रम का कारण उद्दीपक से प्राप्त होने वाली

सूचनाओं में त्रुटियॉं हैं। द्वितीय श्रेणी में भ्रम की व्याख्या न्यूरल लेवल यानि तंत्रिकीय स्तर पर की गई है। तीसरी श्रेणी में भ्रम की व्याख्या संज्ञानात्मक उपागम के तहत की गयी है। इनसे संबंधित कुछ प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन निम्नांकित है।

1) नेत्र-हलचल सिद्धान्त (Eye movement theory) -

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन ओवर द्वारा सन् 1968 में किया गया है। यह सिद्धान्त प्रथम श्रेणी यानी उद्दीपक से मिलने वाली सूचनाओं में सन्निहित त्रुटियों द्वारा भ्रम की व्याख्या करने वाला सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त की मुख्य बात यह है कि व्यक्ति जब किसी ज्यामितिक चित्र (ज्योमिट्रिकल फीगर) को देखता है, तो उस चित्र का आकार एवं परिरेखा द्वारा व्यक्ति की ऑंख की गति में कुछ परिवर्तन हो जाता है। इस परिवर्तन के कारण व्यक्ति को भ्रम होता है। उदाहरण के लिए - क्षैतिज-लम्बवत भ्रम को ही लें। लम्बवत रेखा को देखने में जो नेत्र गोलक में गति होती है उसमें व्यक्ति को अधिक प्रयास करना पड़ता है परन्तु क्षैतिज रेखा जिस पर कि लम्बवत रेखा खड़ी है को देखने में नेत्र गोलक में जो गति होती है उसमें व्यक्ति को कम प्रयास करना पड़ता है। यही कारण है कि लम्बवत रेखा की लम्बाई क्षैतिज रेखा की लम्बाई की अपेक्षा अधिक मालूम पड़ती है। उसी तरह मूलर लायर भ्रम की भी व्याख्या की जा सकती है। जब पंख रेखा को व्यक्ति देखता है तो इसके दोनों किनारों को देखने में जो नेत्र गोलक में गति होती है, वह अधिक देर तक होती है परन्तु तीर रेखा को देखते समय जो नेत्र गोलक में गति होती है, वह थोड़ी देर तक होती है। यही कारण है कि व्यक्ति पंख रेखा को तीर रेखा से बड़ा प्रत्यक्षित करता है।

2) तद्नुभूति सिद्धान्त (Empathy theory) -

यह सिद्धान्त भ्रम की एक क्लासिकल थ्योरी है इसका प्रतिपादन मुख्यतः लिप्पस-1897 के प्रयासों के परिणामस्वरूप हुआ। इस सिद्धान्त के अनुसार ज्यामितिक चित्रों को देखते समय व्यक्ति में कुछ विशेष सांवेगिक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जिसके कारण भ्रम होता है। उदाहरण के लिए मूलर-लायर भ्रम में पंख रेखा को देखने से व्यक्ति में फैलाव की सांवेगिक अनुभूति होती है जबकि तीर रेखा को देखते समय सिकुड़न की सांवेगिक अनुभूति होती हैं यही कारण है कि पंख रेखा तीर रेखा से बड़ी दीख पड़ती है। परन्तु यह सिद्धान्त बहुत वैज्ञानिक नहीं है और सचमुच में इस सिद्धान्त द्वारा भ्रम के बारे में हमें स्पष्ट जानकारी भी नहीं मिलती है।

3) क्षेत्र सिद्धान्त (Fieldtheory) -

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन गेस्टाल्टवादियों द्वारा किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार भ्रम की परिस्थिति में उद्दीपक का पूरा क्षेत्र उद्दीपक के किसी एक भाग के प्रत्यक्षण को प्रभावित करता है। जब भी व्यक्ति किसी उद्दीपक चित्र को देखता है जो उस चित्र में संतुलन का एक बिन्दु जिसे लोकस ऑफ इक्वीलिबिरियम कहा जाता है, उत्पन्न होता है जहॉं आकर्षण बल तथा विकर्षण बल समान होता है। ऐसी परिस्थिति में यदि कोई दूसरा चित्र या रेखा को उसमें जोड़ा जाता है, तो उससे संतुलन में गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण दूसरा चित्र या रेखा अपने मूल रूप से विकृत नजर आता है और हमें भ्रम होता है। उदाहरण के लिए अर्नस्टीन भ्रम में वर्ग अपने मूल

रूप से कुछ विकृत इसलिए दीख पड़ता है क्योंकि वर्ग से धारीदार वृत्त के संतुलन केन्द्र में गड़बड़ी होने लगती है। ठीक यही बात ऑरबिसन भ्रम के साथ भी होती है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने क्षेत्र सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा है कि इस सिद्धान्त द्वारा सभी तरह की व्याख्या नहीं होती है। इसके द्वारा अर्नस्टीन भ्रम, ऑर्बिसन भ्रम, वुंट भ्रम आदि जिनका आधार आकार, तथा दिशा में विकृति है, की व्याख्या तो होती है परन्तु मूलर-लायर भ्रम, क्षैतिज-लम्बवत भ्रम आदि की व्याख्या नहीं हो पाती है।

4) परिदृश्य सिद्धान्त (Perspectivetheory) -

परिदृश्य सिद्धान्त को समरूपता सिद्धान्त भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार भ्रम होने का प्रधान कारण व्यक्ति द्वारा रेखाओं या चित्रों के बीच एक खास परिदृश्य या पृष्ठभूमि को देखना होता है। उदाहरण के लिए, मूलर-लायर भ्रम में तिरछी रेखाओं द्वारा एक विशेष प्रकार का परिदृश्य विनिर्मित होता है जिसके कारण तीर रेखा पंख रेखा से कुछ छोटी मालूम पड़ती है। भिन्न- भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न संस्कृति में पाला पोषा जाता है तथा अपने समाज एवं संस्कृति के नियमों को सीखे हुए होता है। इन नियमों के अनुसार ही वह किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा घटना को देखता सीखता है। और इस तरह से व्यक्ति में किसी वस्तु, व्यक्ति या घटना को देखने समझने का एक खास परिदृश्य विकसित होता है। इस परिदृश्य के कारण व्यक्ति में भ्रम उत्पन्न होता है। अगर परिदृश्य सिद्धान्त की यह व्याख्या ठीक है तो एक संस्कृति से दूसरे संस्कृति के व्यक्तियों द्वारा अनुभव किये गये भ्रम की मात्रा में अन्तर होना चाहिए। इस तथ्य की पुष्टि सीगल, कैमपबेल और गर्सकोविट्स द्वारार सने 1963 से 1966 के बीच किए गए प्रयोग से होती है। इन मनोवैज्ञानिकों ने यूरोपियन, अफ्रीकन तथा अन्य समुदाय के कुछ प्रयोज्यों को मूलर-लायर भ्रम, सैण्डर भ्रम तथा क्षैतिज-लम्बवत भ्रम के चित्रों के प्रति अनुक्रिया करने को कहा गया। परिणाम में पाया गया कि यूरोपियन प्रतिभागियों में मूलर-लायर भ्रम तथा सैण्डर समानान्तर चतुर्भुज भ्रम की मात्रा सबसे अधिक थी जबकि अन्य दूसरी संस्कृति तथा समुदाय के प्रयोज्यों में क्षैतिज-लम्बवत भ्रम की मात्रा सबसे अधिक थी। प्रयोगकर्ताओं के अनुसार भ्रम की मात्रा में इस तरह के अन्तर का कारण भिन्न भिन्न समुदाय एवं संस्कृति में वस्तुओं को भिन्न-भिन्न परिदृश्य में देखने की आदत है। मनोवैज्ञानिकों ने परिदृश्य सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा है कि इस सिद्धान्त द्वारा जिन भ्रमों की व्याख्या होती है, उसकी व्याख्या दूसरे ढंग से आसानी से हो सकती है। जैसे कुन्नापास-1957 के अनुसार क्षैतिज-लम्बवत भ्रम इसलिए होता है क्योंकि दृष्टि क्षेत्र वास्तव में अण्डाकार होता है जिसका परिणाम यह होता है कि लम्बवत रेखा का व्यक्ति अतिआकलन करता है क्योंकि यह दृष्टि क्षेत्र की सीमा के नजदीक होता है।

5) विभ्रान्ति सिद्धान्त -

इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति भिन्न-भिन्न रेखाओं तथा चित्रों को जब देखता है तो वह उसका विस्तृत विश्लेषण करना प्रारम्भ कर देता है। इस विश्लेषण के दौरान उसमें विभ्रांति उत्पन्न होती है और इसके परिणामस्वरूप भ्रम की ही उत्पत्ति होती है। उदाहरण के लिए, मूलर लायर भ्रम को ही लें। जब व्यक्ति तीर रेखा तथा पंख रेखा पर

गौरपूर्वक देखता है तो वह सिर्फ देखता ही नहीं बल्कि उसका विश्लेषण भी करता है। वह पंख रेखा तथा तीर रेखा के किनारे की तिरछी रेखाओं को देखता है तथा उसकी मोटाई तथा लम्बाई को एक-दूसरे से भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से तुलना करता है। इसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति के मन में संभ्रांति उत्पन्न होती है तथा इससे उसमें भ्रम होता है।

6) त्रुटिपूर्ण तुलना सिद्धान्त (Incorrect comparison theory) -

इस सिद्धान्त की मान्यता यह है कि व्यक्ति को भ्रम इसलिए होता है क्योंकि आकृति के गलत हिस्से की तुलना पर वह अपना निर्णय आधारित करता है। उदाहरण के लिए मूलर लायर भ्रम की व्याख्या करने मं यह सिद्धान्त काफी सटीक बैठता है। इस भ्रम में व्यक्ति आकृति में रेखाओं को पंखों से अलग करने में असफल रहता है और इसलिए वह पंखों के अंतिम छोरों के बीच की दूरी की तुलना करता है। चूँकि यह तुलना अनुपयुक्त एवं गलत होती है, इसलिए यह भ्रम व्यक्ति को होता है। इस सिद्धान्त के समर्थन में कुछ प्रयोगात्मक सबूत भी हैं। उदाहरण के लिए कोरन एवं गाइरस ने सन् 1972 में प्रयोज्यों को मूलर लायर भ्रम का प्रत्यक्षण करवाया जिसमें दानें रेखाओं के डैनों को रेखा के रंग से अलग रंग में दिखलाया गया था ताकि प्रयोज्य द्वारा दोनों रेखाओं की जाने वाली तुलना मे डैनों की दूरी की तुलना न हो। परिणाम में देखा गया कि इस तरह के प्रबंध होने से भ्रम की मात्रा में कमी आ गयी जिससे इस सिद्धान्त की वैधता को परोक्ष रूप से समर्थन मिलता है।

7) दुष्प्रयुक्त स्थिरता का सिद्धान्त (Theory of misapplied constancy) -

इस सिद्धान्त के अनुसार भ्रम में उपलब्ध कुछ संकेतों को आकार स्थिरता को बरकार रखने वाले संकेत के रूप में व्यक्ति प्रत्यक्षण करने लगता है और उसी आकार स्थिरता के आधार पर लकीरों या रेखाओं की लम्बाई का निर्णय करते हैं। जो रेखा उन्हें दूर नजर आती है, उसे वह उस रेखा से बड़ा होने का प्रत्यक्षण करता है जो उन्हें अपेक्षाकृत नजदीक नजर आती है। जैसे पोन्जो भ्रम में ऊपरी रेखा निचली रेखा से समान होते हुए भी बड़ी नजर आती है क्योंकि वह निचली रखा से दूर नजर आती है।

8) आभासी-दूरी सिद्धान्त (Apparent distance theory) -

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन कॉफमैन तथा रॉक द्वारा सन् 1962 में किया गया। वास्तव में यह सिद्धान्त आकार-दूरी अपरिवर्तनशील प्राक्कल्पना (size distance invariance hypothesis)से संबंधित है। इस प्राक्कल्पना के अनुसार यदि दो वस्तुओं के अक्षिपटलीय प्रतिमा (रेटीनल इमेज) का आकार एक ही होता है, तो वह वस्तु जो अधिक दूरी पर प्रतीत होती है, वह उस वस्तु की अपेक्षा बड़ा नजर आता है जो कम दूरी पर प्रतीत होता है। इस सिद्धान्त द्वारा मून इल्यूजन की व्याख्या काफी सटीक ढंग से होती है। मून इल्यूजन में मून जब क्षैतिज पर होता है तो वह बड़ा नजर आता है परंतु जब वही चॉद प्रत्यक्षणकर्ता के सिर के ठीक ऊपर अर्थात् शिरोबिन्दु पर होता है तो छोटा नजर आता है। इस सिद्धान्त के अनुसार चॉद जब क्षैतिज पर होता है तो वह प्रत्यक्षणकर्ता को अधिक

दूर पर तथा ज बवह शिरोबिन्दु पर होता है तो वह कम दूरी पर अवस्थित प्रतीत होता है। इस आभासी दूरी में अन्तर होने के कारण व्यक्ति को मून इल्यूजन का भ्रम होता है।

11.6 सारांश

संक्षेप में यदि कहा जाय तो भ्रम अपने आप में एक प्रकार का प्रत्यक्षण ही है हाँ, इसका स्वरूप वास्तविक प्रत्यक्षण के बिलकुल उलट है। वास्तविक प्रत्यक्षण में जहॉ प्रत्यक्षण किये जा रहे उद्दीपक को उसी रूप में प्रत्यक्षण किया जाता है वहीं भ्रम में उद्दीपक के वास्तविक स्वरूप का प्रत्यक्षण न करते हुए उसे कोई अन्य वस्तु, व्यक्ति अथवा घटना समझ कर प्रत्यक्षण कर लिया जाता है अर्थात् गलत प्रत्यक्षण किया जाता है। इस गलत प्रत्यक्षण को ही भ्रम की संज्ञा दी जाती है। इस भ्रम में प्रत्यक्षण के समान ही उद्दीपक का उपस्थित होना बहुत आवश्यक है।

भ्रम के कई प्रकार है जिनमें मूलर-लायर भ्रम, पोन्जो भ्रम, जोलनर भ्रम, ऑरबिसन भ्रम, जोस्ट्रो भ्रम, अर्नस्टीन भ्रम ,डेल्बोफ भ्रम आदि प्रमुख हैं।

मनोवैज्ञानिकों ने भ्रम की व्याख्या करने के लिए अनेकों सिद्धान्तों को प्रतिपादन किया है जिसमें नेत्र-गति सिद्धान्त, तदनुभूति सिद्धान्त, क्षेत्र सिद्धान्त, परिदृश्य सिद्धान्त, विभ्रांति सिद्धान्त तुलनात्मक रूप से प्रमुख हैं।

11.7शब्दावली

- **भ्रम:** गलत प्रत्यक्षण को भ्रम कहा जाता है।

11.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1) भ्रम के आभासी दूरी सिद्धान्त (Apparent distance theory) के अनुसार निम्नांकित में से कौन कथन सत्य है?

(क) भ्रम का कारण नेत्र गोलक की गति में उत्पन्न तनाव है।

(ख) भ्रम का कारण आकृतियों के विस्तृत विश्लेषण से प्रत्यक्षणकर्ता के मन में उत्पन्न संभ्रांति है।

(ग) भ्रम का कारण अक्षिपटलीय प्रतिमा (Retinal Image) के आकार में दूरी के कारण होने वाला परिवर्तन है।

(घ) आकृतियों या वस्तुओं का प्रत्यक्षणकर्ता से अधिक दूरी पर होना है।

2) कभी कभी व्यक्ति जिस वस्तु का प्रत्यक्षण कर रहा होता है उसे उस वस्तु, व्यक्ति अथवा घटना के वास्तविक स्वरूप का प्रत्यक्षण न होकर उसे कोई अन्य वस्तु, व्यक्ति अथवा घटना समझ लेता है। इसे क्या कहा जाता है?

क) अवचेतन प्रत्यक्षण ख) अतिन्द्रिय प्रत्यक्षण

ग) प्रत्यक्षज्ञाणात्मक निगरानी घ) भ्रम

3) कभी कभी व्यक्ति को उद्दीपक वस्तु के उपस्थित न होने पर भी उसके प्रत्यक्षण का अनुभव होता है इसे क्या कहा जाता है?

क) भ्रम ख) विभ्रम ग) व्यामोह घ) प्रत्यक्षण

उत्तर: 1 - ग) 2 - घ) 3 - ख)

11.9सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- उच्चतर प्रायोगिक मनोविज्ञान - डा. अरूण कुमार सिंह - मोतीलाल – बनारसीदास
- सामान्य मनोविज्ञान - सिन्हा एवं मिश्रा - भारतीय भवन
- आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान - सुलैमान एवं खान - शुक्ला बुक डिपो, पटना
- एक्सपेरिमेन्टल साइकोलॉजी - कॉलिन्स एवं ड्रेक
- एक्सपेरिमेन्टल साइकोलॉजी – ऑएगुड

11.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भ्रम के स्वरूप एवं विशेषताओं का सोदाहरण वर्णन करें।
2. भ्रम के विभिन्न प्रकारों का वर्णन करें।
3. भ्रम एवं प्रत्यक्षण के बीच अन्तर स्पष्ट करें।
4. भ्रम एवं विभ्रम के बीच अन्तर स्पष्ट करें।
5. भ्रम के विभिन्न सिद्धान्तों का समालोचनात्मक वर्णन करें।